'प्रगतिशील पुस्तक' के अंतर्गत पहली किताब

नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि

: लेखक :

प्रकाशचन्द्र गुप्त



बनारस

सरस्वती प्रेस

सरस्वती-प्रेस की प्रवृत्तियाँ

- 'हंस' मासिक — ६) वार्षिक
- 'कहानी' मासिक — २) वार्षिक
- गल्प-संसार-माला — ४।=) ,,
- भारतीय पुस्तक-माला — ३) ,,
- हंस पुस्तकें — ३) ,,
- जाग्रत-महिला-साहित्य — ३॥) वार्षिक
- आज की किताब—३) वार्षिक
- प्रगतिशील पुस्तकें—३) ,,
- विविध प्रकाशन

: प्रधान कार्यालय :

— बनारस कैण्ट —

— शाखा —

खजूरी बाजार, इन्दौर : अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ।

— मुद्रक —

श्रीपतराय, सरस्वती-प्रेस, बनारस कैण्ट।

नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि

[हिन्दी साहित्य को एक नए दृष्टिकोण से देखने का प्रयास]

लेखक

प्रकाशचन्द्र गुप्त

स र स्व ती प्रे स,

बनारस ।

वर्ष पहला] [पुस्तक पहली

: क्रान्तिकारी विचारों से ओतप्रोत बारह सौ से अधिक
पृष्ठों का अमर साहित्य ; छः सुन्दर
एवं मोहक पुस्तकों के रूप में घर बैठे नीचे लिखे
वार्षिक मूल्य में मिल सकता है :

वार्षिक मूल्य

तीन रुपया

छः शिलिंग

बर्मा में

तीन रुपया आठ आना

— फुटकर मूल्य —

आठ आना

प्रथम संस्करण : अगस्त, १९४० ।

लेख-सूची

प्राक्कथन्

इस संग्रह के निबन्ध एक विशेष दृष्टिकोण से लिखे गये हैं। इस दृष्टिकोण से हिन्दी-संसार का परिचय उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। समाज और साहित्य में परस्पर एक अन्तरङ्ग सम्बन्ध है और साहित्य समाज का दर्पण है—यह सिद्धान्त इन निबन्धों में व्यवहार-रूप में माना गया है। स्व० 'प्रसाद'जी और सुश्री महादेवी वर्मा हिन्दी-साहित्य के 'रोमैन्टिक' कवि हैं। इनकी आलोचना रूढ़िवादी दृष्टि से की गई है। यह जीवन की विषमताओं से बच कर चलते हैं, और कटु आलोचना लेखक का ध्येय नहीं।

—लेखक

स्वर्गीया रामेश्वरी गोयल

को

नया हिन्दी साहित्य : एक दृष्टि

प्रेमचन्द की उपन्यास-कला

(१)

स्व० प्रेमचन्द ने जब हिन्दी साहित्य में पैर रखा, वह उसके जाग्रति का युग था। भारतेन्दु ने जब लिखना शुरू किया, उस समय साहित्य और कला का पारखी केवल एक जरा-जीर्ण सामन्तीय समाज था; कला को समझनेवाले मध्यमवर्ग का जन्म हो रहा था। प्रेमचन्द को समझनेवाली मध्यवर्ग की जनता काफी तादाद में तैयार हो चुकी थी। इसका कारण भारत में पूँजीवाद का आगमन था। इस जाग्रति के युग में हमारा कथा-साहित्य किस्सा तोता-मैनाऔर बैताल पच्चीसी, चन्द्रकान्ता, भूतनाथ और मि० ब्लैक के जासूसी कर्त्तब छोड़ 'सेवा-सदन' और 'प्रेमाश्रम' की ओर मुड़ा।

अब भारत में पूँजीवाद अपना प्रगतिशील पार्ट पूरा कर सक्रान्ति-काल में पहुँचा है और उसका निर्मित समाज-व्यवधान शिथिल पड़ गया है; किन्तु एक नई शक्ति भी हमारे बीच उठ रही है जो समाज का काया-कल्प कर हमें फिर उन्नति के पथ पर अग्रसर करेगी। इस उन्नति के पथ में अनेक शक्तियाँ बाधा डाल रही हैं, किन्तु उनकी पराजय निश्चित है।

हमारे इतिहास के इस लम्बे युग का पूरा विवरण प्रेमचन्द के साहित्य में मिलेगा। साम्राज्यशाही के कारण भारतीय पूँजीवाद के विकास में बाधा पड़ती रही, किन्तु गाँव में जर्जर सामन्तशाही को पूरी सहायता मिली। नगर में उन्नत मध्यमवर्ग

और गाँव में निम्नश्रेणियों ने स्वाधीनता का झंडा ऊँचा किया, किन्तु अभी उस महा-यज्ञ में पूर्णाहुति नहीं पड़ी है।

प्रेमचंद का साहित्य असल में भारतीय गाँव का आधुनिक इतिहास है। नगर से उन्हें कभी वास्तविक सहानुभूति नहीं हुई। गांधीवाद के प्रभाव में वह गाँव का सरल, निर्मल जीवन अपना ध्येय मानते रहे। उनकी आशाएँ पाँडेपुर पर केन्द्रित थीं, बनारस पर नहीं। भविष्य तो नगर के साथ है, किन्तु भविष्य का नगर 'लाभ' के बल पर अवलंबित न होगा।

प्रेमचन्द की साहित्यिक दुनिया इसी विशाल भारतीय जन-समाज का प्रतिविम्ब है। इस साहित्य में हमें उसका विस्तृत वर्णन मिलेगा। उसके संघर्ष, विजय, पराभव का विशद चित्रण।

प्रेमचन्द की दुनिया एक खंडहर-मात्र है। चतुर्दिक् यहाँ दैन्य, निराशा, दारिद्र्य का चित्र है, किन्तु नव-जीवन का संदेश भी इस समाज के रग-रग और कोंपलों में पहुँच चुका है। प्रकृति का यहाँ अद्भुत साज-शृङ्गार है। फाग, डफ़, अबीर— और आम और महुए के पेड़ों पर कोयल की तान।

यह दुनिया अनेक खिलाड़ियों की रंगभूमि है। पल भर अपना पार्ट अदा कर वे यहाँ से चले जाते हैं। एक मेले की पूरी भीड़ यहाँ मिलेगी, धक्का-मुक्की और तिल रखने को न ठौर। किसान, अहीर, पासी, अन्धे भिखारी, लोभी वणिक, व्यवसायी, पूँजीपति, ज़मींदार, रईस, ओहदेदार, पंडे, मुल्ला, वृद्ध, आबाल, वनिता सभी इस भीड़ मैं मौजूद हैं। यह विश्वामित्र की सृष्टि से अधिक सफल मानव की सृष्टि है और इसमें न्याय, विवेक, त्याग और आदेश के हाथ अन्तिम विजय है।

(२)

प्रेमचन्द का साहित्य परिमाण में काफ़ी है। सेवा-सदन,

प्रेमाश्रम, वरदान, रंगभूमि, कायाकल्प, प्रतिज्ञा, निर्मला, कर्मभूमि, ग़बन, गोदान; इसके अतिरिक्त दो नाटक और अनेक कहानियाँ। इस साहित्य में दिव्य चक्षुओं से देखा हुआ जीवन का एक वृहत् टुकड़ा मिलेगा, अनेक आकर्षक व्यक्ति, साथ ही कहानी का आनंद और जीवन का तथ्य।

'सेवा-सदन' में मध्यम वर्ग के पतन का एक चित्र है, जिसे आगे भी बार-बार प्रेमचंद ने दुहराया है। आमदनी कम, खर्च अधिक, ऊपर सफेदपोशी का ढोंग। यह विडम्बना एक व्यक्ति अथवा परिवार की नहीं, पूरे समाज की है। कम वेतन-भोगी स्कूल मास्टर का संकुचित जीवन, विलास की लालसा, समाज की दुर्व्यवस्था, पतिता स्त्रियों का पथ—यह वीभत्स चित्र कलाकार ने खींचा। यह उसकी पहली उड़ान थी, किन्तु पहली बार ही व्योम-विहारिणी बनी। मध्यवर्ग और नगर-जीवन की असफलताओं का इतना विस्तृत विवरण फिर प्रेमचन्द ने नहीं किया। फिर वह गाँव की ओर झुक गये। यौवन में दाल की मंडी का चक्कर लगाकर उनकी कल्पना ने 'सेवा-सदन' और 'प्रेमाश्रम' की शरण ली।

'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द गाँव की ओर मुड़े। यह जर्जर सामंतशाही का पहला विस्तृत चित्र उन्होंने खींचा। ज़मींदारी प्रथा का विषाक्त वातावरण, कुलीनता की लाज, स्वार्थपरता, त्याग, किसान-समाज की दीनता, अक्षमता, किन्तु बढ़ती संगठित शक्ति। 'गोदान' में उन्होंने इस चित्र को दोहराया, बड़े रस और अलंकार-परिपूर्ण भाषा और भावुकता से। किन्तु इस बार ज़मींदार के हृदय-परिवर्तन की आशा प्रेमचन्द छोड़ चुके थे।

'रंगभूमि' भारतीय समाज का एक व्यापक विशाल चित्र है। रंगभूमि है, रईसों और पंडों का प्रिय काशीधाम और पास

का गाँव पांडेपुर। यह गाँव स्व० प्रेमचन्दजी का गाँव है और सूरदास का मॉडल यहाँ उन्हें एक अंधा भिखारी मिला था। इस कथा के विशाल चित्रपट पर कलाकार ने अपनी तूलिका से सभी तबक़ों का चित्रण किया: हिंदू रईस, ईसाई वणिक, मुसलमान कुलीन गिरती दशा में, अंग्रेज़ अफसर, अहलकार, स्वयंसेवक, राजघराने, रियासतों की दलित प्रजा, रूढ़ि का जकड़ा ग्रामीण समाज, और कथा का सिरताज अंधा फ़कीर सूरदास। घूम-फिरकर कथा पाँडेपुर में ही केन्द्रित होती है। कारण है सिगरेट की फेक्टरी जिसके खुलने से गाँव में अनेक पातक फैलते हैं, अत्याचार होते हैं और अत में जाग्रति होती है।

'कायाकल्प' में प्रेमचद कुछ आध्यात्म की ओर ढुलके। यह प्रवृत्ति उनके साहित्य में सदा रही है। उनकी कहानी 'मूँठ' इसका एक उदाहरण है। पार्थिव जग में जो हम चरम-चक्षुओं से देखते हैं, उसके पार कुछ है—यह धारणा बढ़कर 'कायाकल्प' में कथा-वस्तु का रूप विकृत करती है। इस कारण 'कायाकल्प' केवल सामाजिक कथा नहीं रही। वह व्यक्ति के जन्म-जन्मांतर, योगाभ्यास, कायाकल्प आदि पचड़ों में पड़ कुछ Ridei Haggard के "She" का आकार-प्रकार ले बैठी है। साथ-ही-साथ उसमें पुराने कुलीनों के प्रति बड़ा मधुर व्यंग भी है—मुंशी वज्रधर के चित्रण में।

'कर्मभूमि' एक सार्वजनिक आंदोलन का अध्ययन है। किस प्रकार जनता का बल चींटी के आकार से क्रमशः हाथी बन जाता है इसका वर्णन इस कथा में है।

'निर्मला' वृद्ध-विवाह का चित्र है। एक पूरा परिवार इसके कारण बिगड़ जाता है। यहाँ विमाता का एक कुशल मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी है।

'ग़बन' हिन्दू गृह-कलह, हिन्दू नारी की आभूषण-लालसा और निम्न मध्यवर्ग की विडम्बना और पतन का शक्तिशाली चित्र है। 'ग़बन' हिन्दू परिवार के कुण्ठित जीवन का गम्भीर ख़ाका है। इस उपन्यास में हमें विशाल कलकत्ता के नगर-जीवन की भी झाँकी मिलती है।

'गो-दान' में प्रेमचंद फिर गाँव की ओर मुड़े, नूतन उल्लास और रस लेकर। 'गोदान' बसन्त के छाया-पट पर बनाया गया झिलमिल चित्र है। उनकी भाषा यौवन-माधुरी से छलकी पड़ती है। किन्तु गाँव की दुर्दशा पर उनके आँसू भी निकले पड़ते हैं। इस भयानक सघर्ष और शोषण का उनकी कुपित, कुण्ठित आत्मा प्रतीकार नहीं देखती और 'गोदान' एक प्रकार से बिना अंत की कहानी है। होरी के चित्रण में कुशल कलाकार के हाथों में वही पुरानी कारीगरी, प्रौढ़ता और सफाई है।

(३)

इस कथा-प्रवाह में कलाकार के अनेक मन्सूबे, खिलवाड़, अद्वितीय कौशल, चिर-संचित यत्न लीन हैं। उनकी ओर हम एक विहंगम दृष्टि डालें।

प्रेमचंद हिंदी के तपसी कलाकार थे। सामाजिक क्रांति की भावना से उनकी रचना ओत-प्रोत है। स्वयं अपने जीवन में वह सक्रिय क्रांतिकारी थे। उन्होंने आदर्श के लिए अपने को मिटा दिया। किन्तु उनका सबसे महान् क्रियात्मक प्रयोग उनकी रचना है।

संगठित सामूहिक शक्ति क्रांति का मार्ग है, यह हम निरन्तर उनकी रचना में देखते हैं। हमारे दलित वर्ग ज़रा-से नेतृत्व की आड़ पाकर संगठित हो विजय के पथ पर बढ़ सकते हैं, यह हम 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' और 'कायाकल्प' आदि कथाओं में देखते हैं।

इस क्रांति का क्या रूप प्रेमचद देखते थे ? 'ऐसी क्रांति जो सर्व-व्यापक हो, जो जीवन के मिथ्या आदर्शों का, भूठे सिद्धांतों का, परिपाटियों का अन्त कर दे। जो एक नए युग की प्रवर्त्तक हो, एक नई सृष्टि खड़ी कर दे।' (कर्मभूमि) हमारे दलित वर्गों के त्राण का संदेश इस क्रांति में है, गाँव के दीन, दुखी, शोषित श्रेणियों का, विशेषकर किसान का। युग-युग की सचित निरंकुशता से विकृत जमींदारी प्रथा, साथ ही पुलिस आदि का रोग यह क्रांति समाप्त कर देगी। इस क्रांति की लहर दूर-दूर तक फैल समाज की मलिनता धो देगी। उदाहरण के लिए धर्म का ढोंग लीजिए:—

'मि० जॉन सेवक'··'क्या तुम समझते हो कि मैं और मुझ-जैसे और हजारों आदमी, जो नित्य गिरजे जाते हैं, भजन गाते हैं, आँखें बन्द करके ईश प्रार्थना करते हैं, 'धर्मानुराग में डूबे हुए हैं ? कदापि नहीं।...धर्म केवल स्वार्थ-संघटन है।' (रंगभूमि) अथवा, जेल-शासन लीजिए:—

'भोजन ऐसा मिलता था, जिसे शायद कुत्ते भी सूँघकर छोड़ देते, वस्त्र ऐसे, जिन्हें कोई भिखारी भी पैरों से ठुकरा देता ; और परिश्रम इतना करना पड़ता, जितना बैल भी न कर सके। जेल शासन का विभाग नहीं, पाशविक व्यवसाय है, आदमियों से जबरदस्ती काम लेने का बहाना, अत्याचार का निष्कंटक साधन।' (कायाकल्प)

इस प्रकार सामाजिक अन्धकार को कुरेदती कलाकार की अन्तर्दृष्टि चारो ओर पड़ी है, और जहाँ भी पहुँची है, दिव्य आलोक करके लौटी है।

भावना इस कलाकार की अन्तर्ज्योति का साधन है। इस भावना में देह, अदेह, जन, मग, पशु रँग जाते हैं और नवीन

रूप में हमारे सामने आते हैं। इस व्यापक भावना के कारण ही प्रेमचन्द की तुलना गोर्की से की गई है। प्रेमचन्द बुद्धि-वादी थे, किन्तु अतिरंजित भावना ने उन्हें आदर्शवादी बनाया था और उनके बुद्धिवाद के पीछे यह प्रेरणा थी!

प्रेमचंद का एक प्रबल अस्त्र तीखे छुरे-सा उनका व्यंग है। क्रोध से क्षुब्ध जब उनकी कल्पना उग्र रूप ग्रहण नहीं करती, तब वे व्यंग का आश्रय लेते हैं। पंडों के वर्णन में उनका व्यंग उपहास से भर जाता है। अमीरी के चोचलों का वर्णन वह मीठे और कोमल विनोद से करते हैं। आप कहते हैं: 'तोंद के वग़ैर पंडित कुछ जँचता नहीं। लोग यही समझते हैं कि इनको तर माल नहीं मिलते, जभी तो ताँत हो रहे हैं। तोंदल आदमी की शान ही और होती है, चाहे पंडित बने, चाहे सेठ, चाहे तहसीलदार ही क्यों न बन जाय।' (कायाकल्प)

प्रेमचन्द जीवन के किसी भी अंग का चित्र बड़ी कुशलता और सुघड़ाई से खींचते थे। यही प्रेमचन्द कलाकार की सबसे बड़ी विजय थी। क़लम उठाया और नक़्शा खींचना शुरू किया। उनके हाथ में ग़ज़ब की सफ़ाई थी। इस चित्राङ्कन में वह तन्मय, आत्म-विस्मृत हो जाते थे। कभी-कभी तो रंग ज़रूरत से ज्यादा गाढ़ा हो जाता था। सूरदास को लीजिए; एक अंधे भिखारी का वर्णन कर रहे हैं; उसमें इतने तन्मय हुए कि भूल गये, अंधा भिखारी गाड़ी के पीछे मीलों नहीं दौड़ सकता!

इस महान चित्रशाला में हमें जीवन के सभी चित्र मिलेंगे। किन्तु एक चित्र उन्होंने फिर-फिर दुहराया है; जर्जर भारतीय सामन्तशाही का दृश्य; कुण्ठित किसान और संकट में पड़ी ज़मींदारी प्रथा। भारतीय गाँव उनकी रंगभूमि है और किसान

उनका नायक। उनकी सम्पूर्ण आशाएँ यहाँ केन्द्रित हैं। 'शहर अमीरों के रहने और क्रय-विक्रय का स्थान है। उसके बाहर की भूमि उनके मनोरंजन और विनोद की जगह है। उसके मध्य भाग में उनके लड़कों की पाठशालाएँ और उनके मुकदमेबाज़ी के अखाड़े होते हैं, जहाँ न्याय के बहाने ग़रीबों का गला घोटा जाता है। शहर के आस-पास ग़रीबों की बस्तियाँ होती हैं।...' (रंगभूमि) यह शहर के प्रति उनका रुख़ है।

प्रेमचन्द की कथाओं में दृश्य-नाट्य बहुत है। एक-एक घटना का वह तल्लीनता से वर्णन करते हैं। भारतीय रंगमंच के उत्थान-काल में वह नाटककार हुए होते। जो दृश्य उनकी लेखनी वर्णन करती है, उसे नेत्र मानो सजीव देखते हों; यह उनकी कला का विशेष चमत्कार है। इस नाट्य-गुण के कारण उनकी कथा की गति में बड़ी तरलता, लचक और आकर्षण है। एक उदाहरण लीजिये :

'निर्मला चटपट बाहर निकली। मुन्शीजी उसके हाथ धुलाने लगे। मगला चारपाई बिछाने लगी। मनोरमा बरोठे में आकर रुक गई। इतना अँधेरा था कि वह आगे क़दम न रख सकी। मरदाने कमरे में एक दीवारगीर जल रही थी। झिनकू उतावली में उसे उतारने लगे तो वह ज़मीन पर गिर पड़ी। यहाँ भी अँधेरा हो गया। मुन्शीजी हाथ में कुप्पी लेकर द्वार की ओर चले तो चारपाई की ठोकर लगी। कुप्पी हाथ से छूट पड़ी। आशा का दीपक भी बुझ गया।' (कायाकल्प)

प्रेमचन्दजी के कथानक विशेष मनोरजक होते हैं। पाठक को बरबस बाँध लेते हैं। खाना-पीना बिसर जाता है। तम्बाकू के बोरों के पीछे छिपकर पढ़े गए तिलिस्माती उपन्यास आख़िर काम आये! घटना-प्रवाह के उतार-चढ़ाव में प्रेमचन्द सिद्धहस्त

थे। 'रंगभूमि' उनका विशालकाय उपन्यास एक साँस में नहीं, तो दो में पढ़ा जा सकता है।

उनके कथा-वस्तु की हलचल समुद्र की तरंगों के सदृश है। घटना आगे बढ़ती है, तूल पकड़ती है। फिर पीछे हट जाती है। कथानक में यह कशमकश अन्त तक जारी रहती है। टेकनीक वही है जो 'बड़े घर की बेटी', 'पंच-परमेश्वर' अथवा 'ईश्वरीय-न्याय' आदि गल्पों में इतनी सफल है। कथानक में शक्ति के साथ-साथ लचक रहती है, जैसे किसी लौह-शलाखा में।

चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्द उस्ताद थे। उन्होंने हिन्दी साहित्य को अनेक अमर पात्र दिये हैं। छोटे-बडे पात्र तो उनकी कथाओं में अगणित भरे पडे हैं, किन्तु इनमें कुछ हमारी जीवन-लीला के चिरसगी बन गये है। सूरदास, विनय, अमरकान्त अथवा होरी इतिहास के अमर पात्रों से कम नहीं। इसी प्रकार स्त्रियों में सुमन अथवा सोफी को समझना चाहिये।

प्रेमचन्द को मनुष्य-स्वभाव का अपरिमित ज्ञान था। बालक, बूढ़े, युवा, स्त्री, पुरुप सभी के स्वभाव की उन्होंने विशद व्याख्या की है। प्रेमचन्द आदर्शवादी थे। मनुष्य का उनके मन में अपार आदर था। कहते हैं, मनुष्य अपने स ही दूसरों को भी परखता है। प्रेमचन्द स्वयं विनोदी थे, यद्यपि उनके आदर्श का झंडा कभी नीचा नहीं हुआ। उनकी खुलकर हँसने की आदत अब भी उनके मित्रों को याद है। यह विनोद-शीलता और आदर्शवाद उनके चरित्र-चित्रण में भी मौजूद है। वह मनुष्य-स्वभाव का ऊँच-नीच पहचानते थे। वह जानते थे कि ऊँचे-से-ऊँचे भी नीचे ढुलक पड़ते हैं और नीचे-से-नीचे भी पश्चात्ताप की आग में जल ऊपर उठने की क्षमता रखते हैं। सूरदास और होरी के स्वभाव में भी दुर्बलताएँ हैं और काले खाँ सरीखे चोर-डाकुओं

के मनों में उच्च भावनाएँ। इस उदारता-मिश्रित स्वाभाविकता से प्रेमचन्द के पात्रों की गढ़न हुई है।

यह चरित्र-निर्माण ही उनके कथानक को आगे बढ़ाता है। कथानक का स्रोत प्रेमचन्द के जग में मनुष्य का चरित्र है, कोई दैवी, अदृश्य शक्ति नहीं। चरित्र-निर्माण और घटना-जाल प्रेमचन्द की कला में एक अंतरंग बन्धन में परस्पर बँधे हैं। दोनो मिलकर जीवन के सदृश ही विचित्र नक्क़ाशी पेश करते हैं।

मनोविज्ञान की ठोस भूमि पर निर्मित यह कलाकार का चरित्र-जग है। सूरदास के मन में भी एकाध बार प्रभुत्व की भावना उठती है। इन्दु के मन में सोफ़ी के प्रति ईर्ष्या जाग्रत हो जाती है। अहल्या विलास की लालसा में उलझ चक्रधर को तज देती है। किन्तु मनुष्य का स्वभाव ही है गिर-गिरकर उठना और आगे बढ़ना! बीच-बीच में प्रेमचन्द मनुष्य-स्वभाव का विवेचन भी करते चलते हैं :

'चंचल-प्रकृति बालकों के लिए अन्धे विनोद की वस्तु हुआ करते हैं। सूरदास को उनकी निर्दय बाल-क्रीड़ाओं से इतना कष्ट होता था कि वह मुँह-अँधेरे घर से निकल पड़ता और चिराग़ जलने के बाद लौटता। जिस दिन उसे जाने में देर होती, उस दिन विपत्ति में पड़ जाता था। सड़क पर, राहगीरों के सामने, उसे कोई शंका न होती थी; किन्तु बस्ती की गलियों में पग-पग पर किसी दुर्घटना की शंका बनी रहती थी। कोई उसकी लाठी छीनकर भागता; कोई कहता—'सूरदास, सामने गड्ढा है, बाईं तरफ़ हो जाओ।' सूरदास बाएँ घूमता, तो गड्ढे में गिर पड़ता।...' (रंगभूमि)

प्रेमचन्द की भाषा ठेठ हिन्दुस्तानी है, सीधी-सादी किन्तु मँजी, प्रौढ़, परिष्कृत; संस्कृत-पदावली से शुभ्र और उर्दू से

चंचल। जो आलोचक कहते हैं कि हिन्दुस्तानी में ऊँचे भावों की रक्षा नहीं हो सकती, उनके सामने प्रेमचंद की नज़ीर है :

'सकीना जैसे घबरा गई। जहाँ उसने एक चुटकी आटे का सवाल किया था, वहाँ दाता ने ज्योनार का एक भरा थाल लेकर उसके सामने रख दिया। उसके छोटे-से पात्र में इतनी जगह कहाँ है? उसकी समझ में नहीं आता कि इस विभूति को कैसे समेटे। अंचल और दामन सब कुछ भर जाने पर भी तो वह उसे समेट न सकेगी।' (कर्मभूमि)

यह भाषा तीखी, पैनी, मर्मस्थल पर आघात करनेवाली है। चुस्त, मुहाविरेदार और अलंकारमयी भी है। उपमा इसकी विशेषता है। जन-साधारण के जीवन से यह अपने शब्द-चित्र बनाती है : 'मुंशी वज्रधर उन रेल के मुसाफिरों में थे जो पहले तो गाड़ी में खड़े होने की जगह माँगते हैं, फिर बैठने की फ़िक्र करने लगते हैं और अन्त में सोने की तैयारी कर देते हैं।' (कायाकल्प)

विनोद इस भाषा से छलका पड़ता है : 'संसार में कपड़े से ज़्यादा बेवफ़ा और कोई वस्तु नहीं होती। हमारा घर बचपन से बुढ़ापे तक हरएक अवस्था में हमारा है। वस्त्र हमारा होते हुए भी हमारा नहीं होता। आज जो वस्त्र हमारा है वह कल हमारा न रहेगा। उसे हमारे सुख-दुख की ज़रा भी चिंता नहीं होती, फ़ौरन बेवफाई कर जाता है। हम ज़रा बीमार हो जायँ, किसी स्थान का जलवायु ज़रा हमारे अनुकूल हो जाय, बस हमारे प्यारे वस्त्र जिनके लिए हमने दर्ज़ी की दूकान की खाक छान डाली थी, हमारा साथ छोड़ देते हैं।' (कायाकल्प)

यह भाषा 'गोदान' में परम रसवन्ती, अलंकार-बोझिल, कवितामयी हो गई है। इसके तरल प्रवाह में कथानक और

कथोपकथन सजल गति से बहे हैं। पात्रों का सजीव वार्त्तालाप प्रेमचन्द कथाकार का निजी गुण है। यह सजीवता कुछ तो भाषा के कारण है, कुछ उनके गहरे अनुभव पर अवलंबित। जो बातचीत हम प्रेमचन्द के उपन्यासों में सुनते हैं, वह जीवन में अपने चारों ओर सुन सकते हैं।

इसी कारण हम उनके उपन्यास-संसार को भारतीय जीवन का एक अङ्ग कह सकते हैं।

(४)

प्रेमचंद की टेकनीक कितनी सफल और परिष्कृत है, इसका प्रमाण 'काया-कल्प' है। टेकनीक की कुशलता उपन्यास का आकर्षण बनाये रखती है। कथा-वस्तु की एक भारी भूल ने 'कायाकल्प' को सामाजिक उपन्यास की श्रेणी से निकालकर आध्यात्म के क्षेत्र में पहुँचा दिया। प्रेमचद की विचार-धारा में सदैव से अश्रुत, अदृश्य जग के प्रति ऐसी भावना की एक तरङ्ग थी। 'रगभूमि' में एक भीलनी ने विनय को एक बूटी दी जिसके बल से सोफ़ी के मन में वासना जग उठी। ऐसी ही कुछ विचित्र उनकी कहानी 'मूँठ' है। 'प्रेमाश्रम' में एक विलासी रईस योगबल से अपने शरीर का विष बाहर निकाल देता है।

प्रेमचंद भावुक थे। कोई ठोस बुद्धिवाद उनकी कला के पीछे नहीं। इस कारण नवीन समाज का व्यवधान भी उनकी दृष्टि में धुँधला-सा रहा। क्रांति के बाद गाँव में स्वर्ण-युग की सरलता और निष्कपटता का फिर राज्य होगा ; ऐसा शायद कुछ उनका स्वप्न था। यह कहिये कि गांधीजी का राम-राज फिर लौटेगा। यह वैज्ञानिक मनोवृत्ति नहीं। सरिता-जल के समान मनुष्य का सामाजिक जीवन भी आगे ही बढ़ता है, पीछे नहीं लौटता। हम

मनुष्य का भविष्य सुविशाल निस्पृह नगरों में देखते हैं, जिनकी जीवन-प्रेरणा लाभ नहीं, सामाजिक उपयोग होगा।

प्रेमचन्द का कथानक घटना-बाहुल्य से दबा रहता है। उपन्यास की नवीन टेकनीक के अनुसार छोटी-छोटी घटनाएँ कथानक को आगे बढ़ाती हैं। ग़बन, गृह-त्याग, मृत्यु, लम्बी-लम्बी यात्राएँ—इनकी प्रेमचन्द के वस्तु-भाग में भरमार रहती है। 'निर्मला' में लगभग सभी पात्र मृत्यु के घाट उतार दिये गये हैं। 'रंगभूमि' का कथानक विशेष चंचल है। इसका कारण हम यह कह सकते हैं कि आज भारतीय जन-समाज का जीवन भी बहुत क्षुब्ध, आतुर और गतिशील है।

एक आरोप हमारा यह है कि कहीं-कहीं प्रेमचंद अस्वाभाविक हो जाते हैं। किसी घटना को तूल देते-देते वह उचित-अनुचित भूल जाते हैं। अंधा सूरदास गाड़ियों के पीछे मील-मील भर कैसे दौड़ सकता है? सोफिया मि० क्लार्क के साथ अकेले राजस्थान में कैसे घूमी, यहाँ तक कि महाराज और दीवान भी उसे मिसेज क्लार्क समझते रहे? यह किस समाज की प्रथा में सम्भव है? 'कायाकल्प' में मरणासन्न मनोरमा चक्रधर के आते ही बच्चे को लेकर चारों ओर दौड़ने लगी! क्या यह कथाकार के अधिकार का दुरुपयोग नहीं? 'कर्मभूमि' में भद्र महिला सकीना अमरकान्त से दूसरी ही भेंट में घुल-मिलकर प्रेम की बात करने लगी!

प्रेमचंद के कुछ पात्र भी व्यक्ति की अपेक्षा 'टाइप' बन जाते हैं, धूर्त्त, मक्कार अथवा संत। ऐसा कभी-कभी ही हुआ है। 'रंगभूमि' में कर्मनिष्ठ, धर्म-भीरु ताहिरअली ग़बन कर बैठते हैं; किन्तु माहिरअली अथवा उनकी माताएँ बिल्कुल नहीं झुकतीं। मिसेज़ जॉन सेवक के हृदय से मातृ-भाव विलीन हो गया है।

उनका चरित्र जड़ है, विकासमान नहीं। इसके विपरीत हम उनके अनेक पात्रों को डाँवाडोल, चलमान देखते हैं। यह मनुष्य का स्वभाव ही है। वह एक जगह स्थिर नहीं रहता।

(५)

एक पल प्रेमचंद की तुलना साहित्य के अन्य उपन्यासकारों से करें।

प्रेमचंद हमें सहज ही 'डिकिंस' का स्मरण दिलाते हैं; वही घटना-प्राबल्य, पात्रों की भीड़-भाड़ और सामाजिक परिवर्त्तन की लग्न। 'डिकिंस' भी नीचे वर्गों का चित्रण करता है, किन्तु वह नगर-जीवन का चित्रकार है और बहुधा उसके चरित्र विकृत, अस्वाभाविक हो गये हैं। जैसे उसने दुर्बीन के ग़लत सिरे से जीवन देखा हो! 'डिकिंस' को लंदन का चित्रकार कहा गया है। प्रेमचंद शहर से तने रहते थे।

गोर्की से भी प्रेमचंद की तुलना एक हद तक उपयुक्त है। दोनो ही क्रान्ति के समर्थक और दलित वर्गों के अगुआ थे। गोर्की के जगत में पात्रों की यह भीड़-भाड़ नहीं। यदि प्रेमचंद किसान-जीवन के कलाकार हैं, तो गोर्की मज़दूरों का है। फेक्टरी, बाज़ार-हाटों की हलचल, और क्रांति की अबाध गति— ये गोर्की की कथा 'माँ' के अपने गुण हैं। 'कर्मभूमि' में कथानक का विकास 'माँ' के ही सदृश हुआ है।

गेल्ज़वर्दी ने भी अपने समाज का विस्तृत इतिहास लिखा है, किन्तु वह उच्च मध्यवर्ग के प्राणी थे। इसी समाज में उनका जीवन केन्द्रित था। निम्न वर्गों की ओर भी वह झुके हैं, लेकिन बहुत कम। पशुओं की मनोवृत्ति वह भी प्रेमचंद के समान समझते हैं; किन्तु उनका स्नेही पशु घोड़ा या कुत्ता है, प्रेमचंद का बैल। यह भेद उनकी कला की नींव तक हमें पहुँचाता है। घोड़ा और

कुत्ता विलास और मनोरंजन का साधन है, बैल रोज़ी का।

अपने देश में रवि बाबू और शरद् बाबू से उनकी तुलना हम कर सकते हैं।

रवि बाबू के कथा-भाग में रेशम के तारों-सा कोमल रईसी जीवन है। उनकी भाषा-माधुरी, चतुर शब्द-विन्यास, काव्यमय जीवन-झाँकी हमें एक शान्त, स्निग्ध वातावरण में पहुँचा देती है, जहाँ जीवन की विषमता और कठोरता विकराल रूप से हमारे सामने नहीं आती। भावनाओं के जग में ही कवि की प्रेरणा विचरती है।

शरत् बाबू हिन्दू भद्र-समाज के कठोर आलोचक हैं, उसकी दहेज-प्रथा के, ढकोसलों और दलबंदियों के। 'पल्ली समाज', 'अरक्षणीया' आदि हमारे समाज के वीभत्स चित्र हैं। शरत् बाबू के पात्र बहुत मर्म-स्पर्शी होते हैं। वह हमारे हृदय में बेहद उथल-पुथल मचा देते हैं।

प्रेमचंद की कला में न तो रवि बाबू का काव्य-रस है, न शरत् बाबू का मर्मस्पर्शी चरित्र-चित्रण। किन्तु आपने अपनी कला में भारतीय जीवन के उस विशाल, विस्तृत स्तर को छुआ है, जो अब तक अदृश्य और अछूता था। आपने भारत के मूक जन-समाज को वाणी दी है और अभूतपूर्व साहित्यिक जीवन। यही आपकी बड़ी बिभूति है। इस दृष्टिकोण से प्रेमचन्द कलाकार, रवि बाबू और शरत् बाबू से भी एक पग आगे हैं।

●

वर्तमान प्रगति

आज हमारे देश में एक नया जीवन और उत्साह है। इस पुनर्जन्म का संदेश साहित्य के रग-रग और कोंपलों तक में पहुँच चुका है। अब हम किस दिशा की ओर बढ़ें यह प्रश्न हमारे सामने उठता है?

साहित्य जीवन से बँधा है। जब वह जीवन से अलग हो जाता है, तभी उसका पतन शुरू होता है। हिन्दी की अखंड काव्य-धारा जीवन के स्रोत से ही फूट कर निकली थी। तुलसी, सूर, मीरा अथवा कबीर की पदावली देश के प्रतिनिधि-भावों से प्रेरित हुई थी जैसे देश का मूक जीवन अनायास ही मुखरित हो उठा हो। यही कारण है कि तुलसी और सूर हिन्दी-साहित्य के अमर कलाकार हैं। जब देश की संस्कृति का जीवन आशंका में था, उसकी रक्षा के लिए साहित्य में एक लहर उठी और किनारे तक हमको ले आई।

रीतिकाल की कविता हल्की उतरती है, क्योंकि उसकी प्रेरणा भारतीय जन-समाज की आशा, आकांक्षाएँ न थीं; वह केवल उच्च-वर्ग की विलास-सामग्री बन गई थी।

आज यद्यपि हमारे साहित्य का काया-कल्प हुआ है और जीवन-भार से हिन्दी आकुल-सी है, यह आशंका हमारे मन में उठती है कि मध्य-वर्ग की संस्कृति के खँडहरों पर अश्रुपात करता ही हमारा साहित्य न रह जाय!

पुराने युग का अन्त और नये का जन्म—हम देख रहे हैं।

भारत में ही नहीं, सारे संसार में। प्रत्येक जन्म के साथ पीड़ा रहती है। इस विलीन होती हुई मध्य-वर्ग की संस्कृति का जितना अच्छा " Swan Song " गॉल्जवर्दी ने गाया, शायद किसी और कलाकार ने नहीं। वही मर्सिया आज हम हिन्दी के काव्य में भी सुनते हैं। अपने साहित्य की इस अन्तर्वेदना को समझने के बाद नयी आशा, अभिलाषाएँ, देश के जीवन में होती हुई क्रान्ति और भावों के संघर्ष हम कला में प्रतिबिंबित देखना चाहते हैं।

हमारे कवियों ने जीवन से मुख मोड़ 'अनन्त' को अपना राग सुनाया है। हमारे कहानीकार केवल मध्य-श्रेणी के जीवन-चित्र खींचने में लगे हैं। प्रेमचन्द ने अवश्य ही फेक्टरी और बाजार-हाटों में जो नयी पुकार उठी है, उसे सुना था और उनकी कला में हमें इसकी प्रतिध्वनि भी मिलती है। हिन्दी के एकाकी नाटककार 'प्रसाद' अतीत के सुनहले सपने देखने में तल्लीन जीवन के दुःसह दुःस्वप्न न देख सके। क्या जो देश में नयी शक्तियाँ भूकम्प की सागर-लहरी की तरह उमड़ रही हैं, उनको कोई प्रतिनिधि-कलाकार नहीं मिलेगा? उस भावी गोर्की को हमारी आँखें निष्फल खोज रही हैं।

हिन्दी के युवा कलाकारों के प्रति हमारी भारी कृतज्ञता है। उन्होंने हिन्दी-साहित्य को पुरानी लीक से निकाल कर नया पथ सुझाया। किन्तु जीवन तो प्रगतिशील है। कल जो आगे थे, आज पिछड़े जा रहे हैं।

पन्त के 'परिवर्त्तन' में देश का क्रन्दन व्यापक नाद कर उठा है। इतनी प्रगतिशील चीज हिन्दी में कम ही है। कवि के हृदय की अन्तर्वेदना यहाँ विवश हाहाकार कर उठी है।

"आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी साँस
वही मधुऋतु की गुञ्जित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिञ्चनता में निज तत्काल
सिहर उठती,—जीवन है भार!
आज पावस-नद के उद्गार
काल के बनते चिह्न कराल;
प्रात का सोने का संसार
जला देती संध्या की ज्वाल!
अखिल यौवन के रंग उभार
हड्डियों के हिलते कंकाल;
कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, काँस, सिवार;
गूँजते हैं सबके दिन चार,
सभी फिर हाहाकार!!"

'रूपाभ' के जन्म-काल से पन्तजी के काव्य का भी पुनर्जन्म हुआ है और आपके "छन्द के बन्ध" खुल गये हैं। शायद हिन्दी का और कोई साहित्यकार प्रगतिवाद इतना अच्छा न समझता हो। किन्तु पन्तजी के इस नवीन काव्य में हमें कुछ खोया-सा लगता है। आपके मस्तिष्क की पुकार यह कविता है; आपकी आत्मा का उमड़ा हुआ

भाव-स्रोत नहीं। आपने समाजवाद किताबों से सीखा है, जीवन से नहीं।

इसके ठीक विपरीत 'नवीन' की वाणी में निरन्तर इनक़िलाब की गूँज है। वर्षों के मनन के बाद पन्त 'बापू के प्रति' कहते हैं :

"तुम मांस-हीन, तुम रक्त-हीन,
हे अस्थि-शेष ! तुम अस्थि-हीन,
तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन !"

'नवीन' अनायास ही अपना स्वर उठा कर कहते हैं :

'ओ असिधारा पथ के गामी !' और यह पंक्ति हमारे स्मृति-पट पर पत्थर की लकीर-सी अंकित हो जाती है !

'निराला' के काव्य में एक नया ही गति-प्रवाह और संगीत है। जब वे स्वयं अपनी कविता पढ़ते हैं तो उनके स्वर की गंभीरता और संगीत-ज्ञान के कारण मन पर काफी प्रभाव पड़ता है। काव्य-परम्परा से उनका घोर विरोध है, विशेषतया 'टेकनीक' के मामले में। आपने मुक्त छन्दों में कविता की है और कभी-कभी आपकी 'पंक्तियों' का भग्न संगीत हमको ब्राउनिंग का स्मरण दिला देता है, जैसे पन्त के लम्बे बाल और उनका मधुर व्यक्तित्व शेली का। 'निराला' के काव्य में नवयुग की प्रतिध्वनि हमें स्पष्ट मिलती है :

"हमारा डूब रहा दिन मान !
मास-मास दिन-दिन प्रतिपल
उगल रहे हों गरल-अनल,
जलता यह जीवन असफल ;

हिम-हत-पातों सा असमय ही
झुलसा हुआ शुष्क निश्चल !

निकल डालियों से
झरने पर ही हैं पल्लव-प्राण !
हमारा डूब रहा दिनमान !"

भिक्षुक के प्रति आप कहते हैं :

"वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।
पेट पीठ दोनों मिल कर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को—भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।"

निराला हिन्दी के क्रान्तिकारी कवि हैं और नये युग के निर्माण में उनका हाथ भी काफी रहा है। आपके सुन्दर गीत पढ़कर हम यह भी सोचते हैं कि शायद किसी और युग तथा काल में केवल मधुर गीत बनाने में आप तल्लीन रहते । विवश ही फूल के समान आपका स्वर विकसित हो उठता है !

"प्रिय, मुद्रित दृग खोलो !
गत स्वप्न-निशा का तिमिर जाल
नव किरणों से धो लो—
मुद्रित दृग खोलो !"

श्री महादेवी वर्मा का काव्य आँसुओं से भीगा है। कौन जाने बुद्ध की विचार-धारा का यह प्रभाव है, अथवा उनके अपने जीवन की कोई भारी पीड़ा ? शायद नष्ट होती हुई संस्कृति की यह अन्तिम उसासें हों। आज श्रीमती वर्मा के गीत बहुत ही सुकुमार और मीठे हो उठे हैं :

"मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल ;
प्रियतम का पथ आलोकित कर!
सौरभ फैला विपुल धूप बन ;
मृदुल मोम-सा घुलरे मृदु तन ;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल गल !"

जग के राग द्वेष से अलग मानो कवि ने यह प्रेम का अलख जगाया हो। आशा है इन गीतों का जुगनू-सा आलोक प्रेमी का पथ सदा आलोकित करता रहेगा।

प्रेमचन्द गाँव में बहुत रहे थे। ग्रामीणों के हृदय की बात वह खूब समझते थे। भारतीय किसान को अभी तक इतना सफल साहित्यिक प्रतिनिधि और नहीं मिला। प्रेमचंद सफल कलाकार होने के साथ-साथ देश के जीवन से बँधे थे। काल की गति के साथ उनकी कला मूल्य कम न होगा, वरन् अधिक ही आँका जायगा। मध्य-युग की समाज-योजना उनकी किसान-गाथाओं में भविष्य के लिए सुरक्षित मिलेगी। इसी प्रकार गॉल्जवर्दी के Forsyte Saga में इंग्लैंड के मध्य वर्ग का चित्र इतिहासवेत्ताओं को आकर्षित करता रहेगा।

युवक कलाकारों में विद्रोह की भावना भगवतीचरण वर्मा में बहुत प्रबल है। इस युग की रीति-नीति से उनका घोर मतभेद है। केवल विवेक के सहारे वे नये युग का निर्माण करने निकले हैं। उनके चित्र जन-साधारण के जीवन को नहीं छूते। नगरों में युवक-टोलियों के साथ उन्होंने सदा जीवन बिताया है। उसी जीवन से उनकी अनुभूति और प्रेरणा है। आशा है, अब विशाल कलकत्ता की 'मिलों' का क्रन्दन उनकी कृति में आ जायगा।

जैनेन्द्र कुछ खोजने में व्यस्त हैं, पता नहीं क्या? आशा है इस बड़ी भारी खोज के बाद उन्हें कुछ मिलेगा। अपना कोई नया ही पन्थ निकालने की वे धुन में हैं। रूढ़ि-ग्रस्त समाज का ढाँचा आपको भी रुचिकर नहीं, इसी कारण क्रान्तिकारी कला-कारों में हम आपकी गणना करते हैं। 'परख', 'सुनीता'—'त्याग-पत्र'—में आपकी विचार-धारा की गति क्रान्तिकारी है। आशा है, आपका कोई लक्ष्य है। बीहड़ में भटकते ही आप न रह जायँ, कभी-कभी यह आशंका मन में उठती है।

मधु के बहाने बच्चन ने भी परम्परा की रूढ़ियों का विरोध किया है—

"मैं हृदय में अग्नि लेकर,
एक युग से जल रहा हूँ।"

आपका मधु सांकेतिक है, यह स्पष्ट ही है—

"इस नीले अञ्चल की छाया में
जग-ज्वाला का झुलसाया
आकर शीतल करता काया,
मधु-मरहम का मैं लेपन कर

अच्छा करती उर का छाला ।
मैं मधुशाला की मधुशाला !

"मधु-घट ले जब करती नर्त्तन,
मेरे नूपुर की छूम-छनन में
लय होता जग का क्रन्दन ।"
भूमा करता मानव-जीवन का
क्षण-क्षण बन कर मतवाला ।
मैं मधुशाला की मधुबाला !"

यह उनकी मधुबाला किसी नये जग की ओर हमें बुला रही है !

नाटककारों में श्री भुवनेश्वरप्रसाद का नाम विशेष उल्लेखनीय है, यद्यपि शॉ के ऋण-भार से आपने अपने को अधिक दबा लिया है। आपके "कारवाँ" का दृश्य कुछ विचित्र कौतूहल और आकर्षण लिये है। मरुभूमि की-सी प्यास लिये इस युग की अतृप्त आकांक्षाओं का यह 'कारवाँ' घटियाँ बजाता अजीब उच्छृंखलता से हमारी आँखों के सामने से निकलता है। Stage directions में दिये—और अलग भी—आपके चित्र विशेष सफल हैं—

"कानपुर के पार्श्व-भाग में लज्जा से मुँह छिपाये कुलियों के निवास-स्थान ।"

"एक बीस-बाईस वर्ष की युवती, मलिन वस्त्रों में इस प्रकार दीखती है, जैसे आँसुओं की नीहारिका में नेत्र ।"

"पीछे घर का नौकर है जो भाग्य के समान काँप रहा है ।"

इस साहित्य में मध्य-वर्ग की विलीन होती हुई संस्कृति की स्पष्ट छाया है। जीवन के बहुत से सपने, आशा, अभिलाषाएँ, स्मृतियाँ।

हमारा साहित्य रूढ़ि-ग्रस्त न हो जाय, किसी एक लीक में बैलगाड़ी के पहिए की तरह न फँस जाय, सदा ही जीवन के साथ चले—यह हमारी अभिलाषा है। हिन्दी-साहित्य जाग्रत स्वतन्त्र और उन्नत है। किन्तु जन साधारण से अभी तक उसे विशेष प्रेरणा नहीं मिली।

यदि देश तथा जाति की क्रान्ति और नये जीवन में हम साथ रहना चाहते हैं, तो समझ-बूझ कर अपना पथ निर्दिष्ट करना होगा। नहीं तो तूफ़ान की लहरों के हम खेल बन जायँगे।

कविता

हिन्दी-साहित्य का 'सरस्वती' के प्रति विशेष आभार है, जिसने रूढ़िग्रस्त काव्य-परम्परा को नया पथ सुझाया। 'सरस्वती' के शासन-काल तक हिन्दी कविता ब्रजभाषा में लिखी जाती थी और गद्य खड़ी बोली में। श्रद्धेय द्विवेदीजी की नई नीति के कारण हिन्दी कविता की भाषा भी जीवन के अधिक निकट आ गई। इसके अतिरिक्त इस युग में कविता अधिक नहीं फली-फूली।

इस दृढ़ नीव पर ही आधुनिक हिन्दी कविता का भव्य प्रासाद खड़ा हुआ। श्री मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में प्रौढ़ता अब आई है। 'साकेत' 'यशोधरा' और 'पंचवटी' के सामने 'भारत-भारती' और 'जयद्रथ-वध' नहीं टिकते। गुप्तजी का विशेष गुण आपकी भगवद्‌भक्ति और अनवरत अध्यवसाय है। कहते हैं कि कवि बन नहीं सकते, जन्मते हैं। यह कथन आप पर नहीं लागू होता। अपने सतत् परिश्रम से ही आप कवि बने हैं। हिन्दी कविता के आज आप सिरमौर हैं और मर्म छूनेवाली कविता आपकी वाणी से फूट रही है :

'सखि, वे मुझसे कहकर जाते,
स्वयं सुसज्जित करके रण में ;
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में ;
क्षात्र धर्म के नाते।...'

हिन्दी कविता के वास्तविक युग-प्रवर्तक पन्त थे। यद्यपि 'प्रसाद' और 'निराला' समय में उनसे पहले आये। 'प्रसाद' और 'निराला' स्वयं बड़े कवि थे; किन्तु उनकी कविता का युवक-समाज पर वह प्रभाव नहीं पड़ा, जो पन्त का। पन्त की 'वीणा' ने मानो युगों की सोई कविता-राजकुमारी को अनायास ही जगा दिया। कारण जो भी हो, हिन्दी कविता आज साहित्य के सभी अंगों से बढ़ी-चढ़ी है और उसकी उमड़ी धार रोके नहीं रुकती। आज उसके कोमल-कान्त-कलेवर से यौवन फूटा पड़ता है।

इस नई हिन्दी कविता का 'छायावाद', 'रहस्यवाद', आदि नामकरण-संस्कार लेकर घोर वितण्डावाद भी चला जो अब ठंडा पड़ रहा है। शेक्सपियर ने कहा है: What's in a name!' मतलब की बात यह है कि इस कविता में प्राण और शक्ति हैं और निरन्तर यह बढ़ रही है। अंग्रेज़ी और बँगला-साहित्य की इस काव्य पर गहरी छाप थी। इस नये वेश-विन्यास में कविता-नागरी का रूप पुराने पारखी न समझ पाये।

नये ढंग के टूटे-से छंदों में नये ही विषयों पर यह कविगण अपने राग अलाप रहे थे। जो दूर देश से किसी अनजान शक्ति का संदेश इन्हें मिला था, उसे किसी ने समझा, किसी ने नहीं। किन्तु ये अपना स्वर साधकर कहते ही रहे:

'हमें जाना है जग के पार।—
जहाँ नयनों से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती नव-रस-धार—
वहीं जाना, इस जग के पार।'

कवि के चिर-अन्ध नयन खुलते ही उसने एक सुन्दर स्वर्णिम जग अपने चारों ओर पाया :

'कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम ?
अये अभिनव, अभिराम !'

यह विस्मय-भाव चाहे जिस नाम से पुकार लिया जाय। सच्ची अनुभूति इस कविता में अवश्य थी।

नवयुग के सूत्रधार 'प्रसाद' आधुनिक हिन्दी कविता को आगे बढ़ाकर दिवंगत हो चुके हैं। 'आँसू', 'झरना', 'लहर' और 'कामायिनी' लम्बी यात्रा के चिन्ह चिरकाल तक आपके स्मारक रहेंगे। आधुनिक हिन्दी कविता का पीड़ा के प्रति मोह 'प्रसाद'जी की रचना से ही शुरू हो जाता है। 'आँसू' के मुख-पृष्ठ पर ही आपका यह छन्द था :

'जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई !'

'प्रसाद' उच्च कोटि के शिल्पकार हैं। आप किसी मत-मतान्तर में कभी नहीं फँसे। 'कला कला के लिए' आपका ध्येय था। सतत सुन्दरता की खोज में आप लगे रहे ; जहाँ वह मिला, वहीं से उसे बटोर लिया। प्रणय और पीड़ा से ही कवि का भाव-स्रोत अधिक उमड़ता है। इस कारण आपके काव्य पर इनकी छाप है।

'झरना' में 'प्रसाद' की कविता का प्रारम्भिक रूप है। आपके काव्य के यहाँ परमाणु हैं, किन्तु मानो अभी बिखरे

हुए हैं। आगे चलकर इन्हीं ने 'प्रसाद' के अनन्य जगत् की सृष्टि की।

'विश्व के नीरव निर्जन में।
जब करता हूँ बेकल, चंचल,
मानस को कुछ शान्त,
होती है कुछ ऐसी हलचल,
हो जाता है भ्रान्त;
भटकता है भ्रम के वन में,
विश्व के कुसुमित कानन में।'

'आँसू' 'प्रसाद' की कला का उत्कृष्ट नमूना है। यह कवि के हृदय का मर्मस्पर्शी क्रन्दन है :

'आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी,
टकराती बिलखाती - सी
पगली - सी देती फेरी ?'

'आँसू' में अनेक सुन्दर चित्र हैं :

शीतल ज्वाला जलती है,
ईंधन होता दृगजल का;
यह व्यर्थ साँस चल चलकर,
करता है काम अनिल का।'

× × ×

जल उठा स्नेह दीपक - सा
नवनीत हृदय था मेरा ;
अब शेष धूम - रेखा से
चित्रित कर रहा अँधेरा ।'

'आँसू' में कवि के हृदय की प्रणय-भावना भी व्यक्त हुई है। इन पंक्तियों में हिन्दी के आधुनिक रहस्यवाद की कुछ झलक है। कहीं-कहीं 'प्रसाद' की विलास-प्रियता भी दीख पड़ती है।

'शशि-मुख पर घूँघट डाले
अञ्चल में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में
कौतूहल-से तुम आये !

× × ×

काली आँखों में कैसी
यौवन के मद की लाली,
मानिक-मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली !

× × ×

तुम सत्य रहे चिर - सुन्दर,
मेरे इस मिथ्या जग के !
थे कभी न क्या तुम साथी
कल्याण- कलित मम-मग के ।'

'आँसू' के बाद 'प्रसाद' की कविता द्रुत-गति से आगे बढ़ी और आपने अनेक अमर पदों की रचना की :

'बीती विभावरी, जाग री !

अम्बर पनघट में डुबो रही, तारा-घट उषा नागरी ।'

अथवा

'ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे ।'

अन्त में अमर-काव्य 'कामायिनी' की रचना कर आप इस लोक से चल दिये । 'कामायिनी' हिन्दी-काव्य का एक उत्तुंग गिरि-शृङ्ग है और साहित्य को 'प्रसाद' की सबसे बड़ी देन । 'कामायिनी' में 'प्रसाद' की कहानी, नाट्य और काव्यकला का अपूर्व सम्मिलन हुआ ।

'निराला'जी हिन्दी कवियों में शक्ति के उपासक हैं । आपके काव्य में सहज माधुरी की अवहेलना-सी है, यद्यपि उमंग आने पर आप मीठी तान भी छेड़ सकते हैं । 'प्रसाद'जी को आपकी 'मतवाला' के मुख-पृष्ठवाली पंक्तियाँ बहुत पसन्द थीं :

अमिय-गरल शशि सीकर-रविकर राग-विहाग भरा प्याला ।

पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह 'मतवाला' ।'

आपकी कविता का संगीत आपके मुख से सुनने पर पूरी तरह प्रकट होता है । स्वर साधकर गंभीर कण्ठ से आप जब अपनी कविता सुनाते हैं, तो प्रकृति की अपेक्षा पुरुष का ही भास अधिक होता है ।

हिन्दी कविता में आपने नये मुक्तक छन्दों से अनुवीक्षण किया और एक भग्न-से किन्तु आकर्षक संगीत की सृष्टि की । आपके काव्य में कुछ नई ही गति और प्रवाह है :

'नव गति, नव लय, ताल-छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्र रव ;
नव नभ के नव विहग-वृन्द को
नव पर, नव स्वर दे !'

'निराला' हिन्दी के क्रान्तिकारी कलाकार हैं। आपने रूढ़िवाद को पग-पग पर कुचला है। आपका शब्द-विन्यास भी कुछ नया ही है :

'छन्द की बाढ़, वृष्टि अनुराग,
भर गये रे भावों के झाग।
तान, सरिता वह स्रस्त ओर,
बह रही ज्ञानोदधि की ओर,
कटी रूढ़ि के प्राण की डोर,
देखता हूँ अहरह मैं जाग।'

आपकी कविता में प्रकृति का और जीवन का सौंदर्य प्रतिबिंबित है, किन्तु जीवन का कठोर सत्य अंकित करना भी आप नहीं भूलते :

'डूबा रवि अस्ताचल,
सन्ध्या के दृग छलछल।'

वीणा-वादिनि से आपकी प्रार्थना है :

'जग को ज्योतिर्मय कर दो !
प्रिय कोमल-पद-गामिनि ! मन्द उतर
जीवन-मृत तरु-तृण-गुल्मों की पृथ्वी पर

हँस-हँस निज पथ आलोकित कर,

नूतन जीवन भर दो !'

पन्त की कविता का हिन्दी की युवा-मण्डली पर भारी प्रभाव पड़ा। रूढ़ियों में फँसी हिन्दी कविता आपका अनुसरण कर नई दिशाओं की ओर बढ़ी और कविता के कंकाल में नवजीवन संचार हुआ।

'वीणा', 'पल्लव', 'गुञ्जन', 'युगान्त', 'युग-वाणी' आपकी यात्रा के पद-चिह्न हैं। अब भी आप नये उल्लास से कविता रच रहे हैं, यद्यपि भाग्यवश 'प्रसाद' की वाणी मौन है, और 'निराला' चुप-से ही रहते हैं।

हिन्दी कविता एक परिपाटी के दलदल में फँस चुकी थी। आपने मानो दिव्य नेत्रों से जगत् में एक अभिनव अनहोना सौंदर्य्य देखा और विस्मय-पुलक आपके कण्ठ में गीत उमड़ पड़ा। 'सरस्वती' में लगातार कई मास जो आपकी कविता निकली थी, उनमें विद्युत् का आकर्षण और शक्ति थी। 'साँकरी गली में माय काँकरी गड़तु है।' सुन्दर चीज़ थी; किन्तु इसे हम कब तक दुहराते? 'सुन सखि, फिर वह मनमोहिनी माधव मुरली बजती है।' यह वस्तु भी सुन्दर थी। किन्तु हम जो दीर्घ-काल से साहित्य-प्रेरणा से जी रहे थे, अब जीवन की ओर मुड़े और प्रथम बार हमने जीवन का सौंदर्य देखा :

'अरे, ये पल्लव बाल !

सजा सुमनों के सौरभ-हार

गूँथते वे उपहार ;

अभी तो हैं ये नवल-प्रवाल

नहीं छूटी तरु-डाल ;
विश्व पर विस्मित-चितवन डाल,
हिलाते अधर-प्रबाल !'

अथवा

'बाँसों का झुरमुट—
संध्या का झुटपुट—
है चहक रहीं चिड़ियाँ
टी-वी-टी—टुट्-टुट् !

'युग-वाणी' से पहले पन्त की काव्य-प्रेरणा माधुरी थी। आपने जीवन में सुख और दुःख का अतिरेक देखा था और संसार का व्यवधान आपको ग्राह्य न था, फिर भी वसन्त और उषा की श्री देखकर आप अपना जी बहला लेते थे। और आपके शान्त वातावरण में कोई भूकम्प की लहरें न उठती थीं।

'मैं नहीं चाहता चिर सुख,
चाहता नहीं अविरत-दुख ;
सुख-दुख की खेल मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख।'

जीवन से आप विमुख हैं, यह कहना अनुचित होगा। 'परिवर्त्तन' और 'बापू के प्रति' कविताओं में इस देश और युग की वाणी मुखरित हो उठी है। 'परिवर्त्तन' देश का क्रन्दन-नाद है :

रुधिर के हैं जगती के प्रात,
चितानल के ये सायङ्काल;
शून्य-निःश्वासों के आकाश,
आँसुओं के ये सिन्धु विशाल;
यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु,
अरे, जग है जग का कंकाल!!'

'रूपाभ' के जन्म-काल से आपकी कविता ने फिर रुख पलटा है। समाजवाद से प्रभावित होकर आपकी कविता में नया रूप-रंग आया है। यह कविता हमारे मस्तिष्क तक पहुँचती है। 'मार्क्स के प्रति' आप कहते हैं:

'दन्तकथा, वीरों की गाथा, सत्य, नहीं इतिहास,
सम्राटों की विजय-लालसा, ललना भृकुटि-विलास;
दैव नियति का निर्भय क्रीड़ा-चक्र न वह उच्छृङ्खल,,
धर्मान्धता, नीति, संस्कृति का ही केवल समरस्थल।
साथी है इतिहास,—किया तुमने निर्भय उद्घोषित
प्रकृति विजित कर मानव ने की विश्व सभ्यता स्थापित।'

पन्तजी का सफल रूप हम वास्तव में प्रकृति के कवि और गीतकार में ही देखते हैं। बसन्त और वर्षा, उषा और सन्ध्या, धूप और छाया—आपके काव्य में अपूर्व माधुरी लेकर प्रकट हुए हैं। 'युग-वाणी' में भी अनोखा रूप लेकर प्रकृति आई है:

'सर् सर् मर् मर्
रेशम के से स्वर भर,

घने नीम दल
लम्बे, पतले, चञ्चल,
श्वसन स्पर्श से
रोम हर्ष से
हिल-हिल उठते प्रतिपल !
'वृक्ष शिखर से भू पर
शत-शत मिश्रित ध्वनि कर
फूट पड़ा लो निर्झर—'

इस अभिनव रूप-जगत् के विश्वकर्मा के प्रति हमारा बड़ा आभार है।

श्रीमती महादेवी वर्मा ने गीति-काव्य को अपनाया है। आप की कविता में मिठास कूट-कूटकर भरी है। आज हिन्दी-कविता के क्षेत्र में अन्य कोई कवि ऐसा नहीं, जिसकी रचना में इतनी मधुरिमा भरी हो। आपके काव्य की शिल्प-कला से तुलना हो सकती है, इतनी नक्क़ाशी और पच्चीकारी आपकी कृति में है। आपके अनेक शब्द-चित्र चिर-स्मरणीय हैं :

'शून्य नभ में तम का चुम्बन,
जला देता असंख्य उडुगन
बुझा क्यों उनको जाती मूक,
भोर ही उजियाले की फूँक ?'

अथवा

मृगमरीचिका के चिर पग धर,
सुख आता प्यासों के पग धर—'

'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्य-गीत' आपके काव्य-प्रासाद के स्तंभ हैं। इस प्रासाद में प्रतीक्षा का दीप जला आपने अपना गीत उठाया है। इस गीत के स्वर निरन्तर अधिक सधे और मीठे होते जा रहे हैं :

'तन्द्रिल निशीथ में ले आये
गायक तुम अपनी अमर बीन !
प्राणों में भरने स्वर नवीन !'

इस गीत की तान निरन्तर ही करुण और व्यथा-भरी है। कवियित्री चिरकाल से ही जीवन की पीड़ा की ओर खिंची हैं। महादेवीजी ने स्वयं अपने दुःखवाद का कारण 'रश्मि' में समझने और समझाने का प्रयत्न किया है :

'दुख के पद छू बहते झर झर,
कण कण से आँसू के निर्झर,
हो उठता जीवन मृदु उर्वर—'

आपके दुःखवाद की चरम सीमा मोम की भाँति गल-गलकर प्रियतम का पथ आलोकित करने में होती है :

'मधुर मधुर मेरे दीपक जल !
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर !

कभी-कभी यह विचार अवश्य चोर की भाँति मन में आता है कि यह अतिशय मिठास और पीड़ा आधुनिक हिन्दी काव्य के आरम्भिक क्षय-चिन्ह न हों। किन्तु आप इसका उत्तर देती हैं :

'जग करुण करुण, मैं मधुर मधुर !

दोनो मिल कर देते रजकण,

चिर करुणमधुर सुन्दर सुन्दर !

जग पतझर का नीरव रसाल,

पहने हिमजल की अश्रुमाल ;

मैं पिक बन गाती डाल-डाल,

सुन फूट-फूट उठते पल-पल

सुख-दुख-मञ्जरियों के अंकुर !'

हिन्दी काव्य में आज एक बहुत जाग्रत शक्ति श्री भगवतीचरण वर्मा हैं। वर्षों पहले 'नूरजहाँ की कब्र पर' लिखी कविता से अब 'भैंसागाड़ी' तक आपने अनवरत काव्य-साधना की है। इसका प्रमाण आपके 'मधु-कण' और 'प्रेम-संगीत' हैं।

आपका व्यक्तित्व आपकी ही पंक्तियाँ उचित रूप से वर्णन करती हैं :

'हम दीवानों की क्या हस्ती,

हम आज यहाँ कल वहाँ चले ;

मस्ती का आलम साथ चला

हम धूल उड़ाते जहाँ चले—'

✓आपकी कविता का मुख्य नोट अतृप्त पिपासा और जीवन के प्रति घोर असंतोष है। यह प्रतिध्वनि निरन्तर आपकी कविता से उठती है :

'अब अंतर में आह्लाद नहीं, अब अंतर में अवसाद नहीं,
अब अंतर में उन्माद नहीं, मैं अंतर को कर चुका नष्ट !'

आपके 'प्रेम-संगीत' में भी निराशा का ही प्राधान्य है।

'जीवन-सरिता की लहर-लहर
मिटने को बनती यहाँ प्रिये।
संयोग क्षणिक !—फिर क्या जाने
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये ?'

आपका यह असंतोष स्वाभाविकतया क्रान्तिकारी विचार-धारा में परिणत हो रहा है। 'रूपाभ' में प्रकाशित 'भैंसागाड़ी' और 'कविजी' इसकी सूचना हैं :

'चरमर-चरमर-चूँ-चरर-मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी !'

बड़े दरिद्र ग्राम से यह 'भैंसागाड़ी' आ रही है।

'उस ओर क्षितिज के कुछ आगे,
कुछ पाँच कोस की दूरी पर,
भू की छाती पर फोड़ों-से
हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर !
मैं कहता हूँ खँडहर उसको
पर वे कहते हैं उसे ग्राम—'

आगे नगर का वर्णन है :

'पीछे है पशुता का खँडहर,
दानवता का सामने नगर,

मानव का कृश कंकाल लिये
चरमर-चरमर—चूँ—चरर-मरर
जा रही चली भैंसागाड़ी !'

हिन्दी कवियों में अकेले पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' गले तक राजनीति में डूबे हैं। यह बात विचारणीय है कि इस राजनैतिक तल्लीनता से उनकी साहित्य-सेवा में बाधा पड़ी है, अथवा उनकी वाणी में कुछ 'नवीन' ओज और शक्ति है! आपके काव्य में क्रान्ति की सच्ची प्रेरणा है। स्वयं आपके मुख से 'पराजय-गान' जैसी कविता सुनकर रोमांच हो आता है। हमें हर्ष है कि आप के काव्य का एक संग्रह 'कुंकुम' अब लम्बी प्रतीक्षा के बाद निकल गया है।

'ढुलमुल' से इस 'नवीन' सन्यासी का अलख गान कुछ दिनों के लिए प्रणय-संगीत में परिणत हुआ, किन्तु 'मानव', 'गुरुदेव गान्धी' और 'झूठे पत्ते' के साथ-साथ फिर वह प्रलयकारी भैरव-नाद बना है। आपकी भाषा संस्कृत, उर्दू मिश्रित कुछ ऊबड़-खाबड़-सी शक्ति और ओज-पूर्ण होती है। 'प्रताप' में प्रकाशित 'विजयादशमी' प्राचीन संस्कृति के प्रति सुन्दर और मधुर श्रद्धाञ्जलि थी।

'बच्चन' उन्नति के पथ पर तीव्रगामी कवि हैं। लोकमत ने आपका नाम 'हालावाद' के साथ जोड़ रखा है, किन्तु आप 'हालावाद' को भी पीछे छोड़ चुके हैं। 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधुकलश', 'निशा-निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत' आपके उन्नति-पथ के पग हैं। मधु के अतिरिक्त आप 'पग-ध्वनि' आदि अनेक कविता लिख चुके हैं जो हिन्दी में प्रसिद्धि पा चुकी हैं। 'पग-ध्वनि' और 'निशा-निमन्त्रण' के गीत 'बच्चन' बड़ी सुन्दरता से और मीठे स्वर से सुनाते हैं।

आपकी कविता में भी जीवन के प्रति घोर असंतोष और विरोध भाव है।

'मैं हृदय में अग्नि लेकर
एक युग से जल रहा हूँ—'

अथवा

'हो नियति इच्छा तुम्हारी
पूर्ण, मैं चलता चलूँगा,
पथ सभी मिल एक होंगे
तम-घिरे यम के नगर में !'

आपके काव्य में जो भाव प्रधान हैं, उन्हीं के कारण समाज में क्रान्ति होती है। 'निशा-निमंत्रण' में आपकी कविता दुःख में अधिक गहरी रँग गई है और आपकी कला बहुत मँज गई है :

'संध्या सिंदूर लुटाती है।
रँगती स्वर्णिम रज से सुन्दर
निज नीड़-अधीर खगों के पर,
तरुओं की डाली-डाली में कंचन के पात लगाती है।
करती सरिता का जल पीला
जो था पल भर पहले नीला,
नावों के पालों को सोने की चादर-सा चमकाती है।
उपहार हमें भी मिलता है,
श्रृंगार हमें भी मिलता है,

आँसू की बूँद कपोलों पर शोणित की-सी बन जाती है।
सन्ध्या सिन्दूर लुटाती है।'

आज हिन्दी में अनेक कवि-आत्मा जाग्रत हैं और हिन्दी कविता का भण्डार भर रहा है। प्रो० रामकुमार वर्मा, गुरुभक्त सिंह, आरसीप्रसाद सिंह, सियारामशरण गुप्त, श्री० 'दिनकर', 'अंचल' आदि। तरुण कवियों में एक प्रगतिशील कवि नरेन्द्र हैं। आपके काव्य का सहज सगीत तो आकर्षक है ही :

'थके जामुन के रँग को पाग
बाँधता लो आया आषाढ !'

आपकी 'प्रभात-फेरी' ने हमें स्वतन्त्रता का संदेश भी सुनाया है :

'आओ, हथकड़ियाँ तड़का दूँ,
जागो रे नतशिर बन्दी !'

आपकी 'प्रयाग', 'भावी पत्नी', 'चिता', 'बबूल', 'मरघट का पीपल' आदि कविताओं में शक्ति और प्रबल प्रवाह है और भविष्य के लिए बड़ी आशा।

'चढ़ लपटों के स्वर्ण गरुड़ पर
फैलेगी जागृति की ज्वाला !'

आज-कल हिन्दी कविता में 'छायावाद', 'दुःखवाद', 'हाला-वाद', 'प्रगतिवाद' आदि अनेक नाम सुन पड़ते हैं। यह हमारे प्रगति-पथ के इंगित हैं और हमारी जागृति के चिन्ह।

आधुनिक हिन्दी-काव्य ने जिस अज्ञात, रहस्यमय जग को अपने चारों ओर पाया है, उसका विस्मित वर्णन 'छायावाद' के नाम से पुकारा जा रहा है। इस काव्य में प्रकृति के सुनहले

और रुपहले रूप का भी बड़ा सुन्दर वर्णन है; ऊषा का अरुण, गुलाबी पथ, अँधियाले का नीला, तारक-खचित परिधान, ऋतुओं का परिवर्त्तन, सागर-लहरी का मधुर संगीत और झंझा का ताण्डव नर्त्तन।

अधिकतर यह काव्य अन्तर्मुखी हो रहा है। कवि अपनी व्यक्तिगत आशा, अभिलाषा और निराशा में जगत् को रँगा पाता है। बाह्य जग केवल उसकी आत्मा की प्रतिध्वनि है। प्रकृति के उल्लास और पीड़ा में वह अपनी आत्म-कथा छिपी देखता है। गीति-काव्य सदैव ही अहंभाव से पूरित रहता है।

कुछ हद तक देश और काल की स्थिति आधुनिक हिन्दी-काव्य के दुःखवाद की सफाई है। यद्यपि हमारी समाज-योजना आज दुःखप्रद और निराशाजनक दीखती है, किन्तु कुछ कवियों ने दूर क्षितिज पर नव प्रभात का अरुण आलोक भी देखा है और उनके गीत में नवीन उल्लास है :

'है आज गया कोई मेरे
तन में, प्राणों में यौवन भर।'

आधुनिक हिन्दी-कविता जीवन के साथ बँध रही है। देश और समाज में जो क्रान्ति हो रही है, उसकी स्पष्ट छाया हमारे काव्य पर पड़ रही है। इसके साक्षी पन्त, 'निराला', भगवती-चरण वर्मा, 'बच्चन', 'नवीन', नरेन्द्र, 'दिनकर' आदि सभी कवि हैं। जिस नन्हें सुकुमार शिशु का जन्म लगभग बीस वर्ष पहले झुटपुटे-से आलोक में हुआ था, वह आज वयः-प्राप्त सुदृढ़, सुगठित तरुण हो गया है। आज हमारी आशा-भरी आँखें भविष्य को देख रही हैं।

●

उपन्यास

कहानी पूर्व के लिए बहुत पुरानी चीज़ है, किन्तु उपन्यास अपेक्षाकृत नया है। यह भी हम नहीं कह सकते कि हिन्दी-उपन्यास का जन्म पश्चिम के सम्पर्क से हुआ। इस देश में 'बैताल पच्चीसी' और 'तोता-मैना' आदि लम्बे किस्से बहुत पहले से चले आ रहे हैं। पद्य में तो लम्बी कहानी परम्परा से हम सुनते रहे हैं। हिन्दी के पहले लोकप्रिय उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' का जन्म फारसी के प्रभाव से हुआ। इस ढंग के उपन्यासों की हिन्दी में कुछ समय तक बाढ़-सी आई। हिन्दी-उपन्यास के दूसरे युग में जासूसी उपन्यासों की भरमार रही। तीसरे युग में सामाजिक उपन्यास फले-फूले और हिंदी-साहित्य ने लम्बे-लम्बे डग भरे। हिंदी-उपन्यास के इस वर्तमान रूप पर अवश्य अंग्रेज़ी की गहरी छाप है।

तिलिस्मी और जासूसी उपन्यास साहित्य की कोई निधि न हो सके। वे केवल समय काटने और मनोरंजन की सामग्री थे। जीवन से कोई उनका सम्पर्क न था। चरित्र-चित्रण उनमें बहुत स्थूल होता था। कथानक का गुण उनमें अवश्य रहता था। जिस साहित्य की जड़ें पृथ्वी में नहीं, उसका जीवन भी क्षणभंगुर होता है।

हिंदी में स्वर्गीय प्रेमचन्द से पहले भी सामाजिक उपन्यास लिखे गये थे। पं० किशोरीलाल गोस्वामी ने दर्जनों उपन्यास लिखे होंगे। ये उपन्यास जीवन के अधिक निकट थे, किन्तु

चरित्र-चित्रण की इनमें कोई जटिलता न थी। बंकिम बाबू की कला से शरद् का उपन्यास जितना आगे बढ़ चुका है, लगभग उसी मात्रा में हम भी गोस्वामीजी की उपन्यास-कला से आगे बढ़ आये हैं।

हिन्दी-उपन्यास के इस शैशव-काल में अन्य भाषाओं से अनुवाद भी खूब हुए। बंकिम बाबू की 'देवी चौधरानी' अथवा श्री हरिनारायण आपटे की 'तालीकोटा की लड़ाई' खूब पढ़े गये। अंग्रेज़ी और फ्रेंच उपन्यासों के अनुवाद भी हुए।

'सेवा-सदन' का प्रकाशन हिंदी-साहित्य के इतिहास में एक स्मरणीय घटना रहेगी। यह हिंदी का प्रथम अमर उपन्यास था। 'सेवा-सदन' नगर-जीवन का विहंगम दृश्य है। अपनी युवावस्था में प्रेमचन्दजी ने बनारस की सड़कों की भी काफी धूल छानी होगी। 'सेवासदन' में मध्य-वर्ग के हिन्दू परिवार का भीषण चित्र है। यह उपन्यास उस काल का लिखा है जब स्वर्गीय प्रेमचन्द समाज के रोगों की दवा जगत् से दूर कोई एकाकी आश्रम समझते थे। 'सेवा-सदन' में मनुष्य-स्वभाव की अच्छी सूझ है। यही हिन्दी-उपन्यास में एक दम नयी बात थी। कथानक का विकास पात्रों की आन्तरिक प्रेरणा से हुआ है, बाहर से नहीं। 'सेवा-सदन' विदेशी-साहित्य से चाहे प्रभावित हुआ हो, किन्तु इसके चित्र भारतीय चित्र हैं।

'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्दजी भारतीय गाँव की ओर मुड़े और कुछ राष्ट्रीय भावनाओं में भी रँग गये। अब हम उनको ग्राम जगत् के कलाकार के रूप में ही अधिक पहचानते हैं। भारतीय किसान का जीवन उनकी कृति में मानो सहस्त्र जिह्वाओं से बोल उठा है। पुराने जमींदार घरानों के द्वेष, फूट दिवालियापन का भी आपने अच्छा नक़शा खींचा। साथ ही इस दारुण

व्यवस्था से मुक्ति पाने की दूर कुछ झिल-मिल आशा देखी। गाँधीजी की विचारधारा के अनुसार कोई उदार धनिक 'प्रेमाश्रम' बसा कर हमको जीवन की इस व्यथा से उबार लेगा।

'रंगभूमि' में प्रेमचन्द समस्त जीवन को अपना क्षेत्र मान कर उठे। संसार की 'रंगभूमि' का उन्होंने एक व्यापक विशाल चित्र खींचने का प्रयत्न किया। इस प्रयास में आप असफल रहे। 'रंगभूमि' में कथानक की जटिलता पर प्रेमचन्द ने पूर्ण अधिकार दिखाया। कुछ अमर पात्रों की भी इस उपन्यास में सृष्टि हुई। सूरदास, विनय, सोफिया आदि। कहते हैं सूरदास का मौडल प्रेमचन्द को अपने ही गाँव से मिला था। 'रंगभूमि' की विशेषता चित्रपट की विशालता थी। इस उपन्यास में कलाकार ने भारतीय जीवन के प्रत्येक पहलू को छूने का प्रयत्न किया—ग्राम, नगर, समाज के विभिन्न वर्ग और श्रेणी, हिन्दू, ईसाई, मुसलमान......।

'कायाकल्प' में प्रेमचन्द की कला ने एक चिंताजनक रुख पलटा। इस उपन्यास में बहुत-सी बातें मनुष्य की सहज बुद्धि से परे थीं। हिन्दी के भाग्य से प्रेमचन्दजी इस दिशा में और आगे नहीं गये और पार्थिव जगत् की वास्तविकता में फिर लौट आये।

इस बीच में 'प्रतीक्षा', 'वरदान', 'निर्मला' आदि आपके उपन्यास निकलते रहे जिनसे किसी और कलाकार का नाम हो सकता था, किन्तु आपकी कला के ये ऊँचे गिरि-शृङ्ग नहीं।

'ग़बन' के प्रकाशन से यह आशंका नष्ट हो गई कि प्रेमचन्द उपन्यासकार अपना उच्चतम कार्य कर चुके। 'ग़बन' ऊँची श्रेणी का उपन्यास था। इस बार फिर प्रेमचन्द ने हमें भारतीय नागरिक समाज का नग्न और वीभत्स चित्र दिखलाया। यह

उपन्यास भारतीय जन-समाज को क्रान्ति की चुनौती है। 'सेवा-सदन' और 'ग़बन' में प्रेमचन्द ने यथार्थवादी चित्र खींचे हैं। ग्रामीणों की कथा कहते-कहते ही कुछ आदर्शवादी हो जाते थे। नगर के मध्य वर्गों से आपको सहानुभूति नहीं।

'गोदान' लिखते समय प्रेमचन्द अपनी शक्तियों पर पूर्ण अधिकारी थे। 'गोदान' आपका सब से शक्तिपूर्ण उपन्यास है। आपकी भाषा मँझ कर काव्यपूर्ण हो गई है। आपका टेकनीक प्रौढ़ है। ग्राम्य-जीवन के प्रति आपका आदर्शवाद भी कुछ ढल चुका है। 'होरी' की चालाकी अब आप समझने लगे थे। फिर भी गाँव का जो सच्चा और भयकर चित्र 'पल्ली समाज' है, वह 'गोदान' नहीं।

'गोदान' चिरकाल तक हिन्दी-उपन्यास का जय-चिह्न रहेगा। कथा की धारा यहाँ अविरल बही है। अनेक पात्र जीवन की झाँकी देते हुए हमारे नेत्रों के सामने से गुज़र जाते हैं। इनको हम सदैव ही याद रखेंगे और जीवन को इनके माप-दण्ड से नापेंगे। भाषा में इस सन्ध्या-काल में कुछ अजब सुनहलापन आ गया है। हम सोचते हैं यह जो जीवन-यात्रा का थका पंछी विश्राम की आशा से अपने नीड़ की ओर आ रहा था, उसके परों में अब भी वेग और शक्ति थी; अभी वह आकाश में ऊँची-ऊँची उड़ान लेने की क्षमता रखता था।

प्रेमचन्द में कथाकार के स्वाभाविक गुण थे। वे अच्छी-अच्छी कहानी कहना जानते थे। जीवन के पात्रों को वे पहचानते थे। उनके दिमाग़ की सब क्रिया जैसे किसी काँच के केस के नीचे वे देख रहे हों। आपके पात्र जीवन में हमारे दुःख-सुख के साथी बन गये हैं। हिन्दी उपन्यास अब गर्वोन्नत अन्य भाषाओं की होड़ कर सकता है।

प्रेमचन्द ने मानो कहानी का बाँध खोल दिया। अब हिन्दी में निरन्तर उपन्यास निकल रहे हैं, किन्तु युवक कलाकारों में हमें ऐसा कोई नहीं दिख रहा जो रीते आसन पर आपका स्थान ले।

'प्रसाद' जी ने अपने जीवन-काल में केवल दो उपन्यास लिखे : 'कंकाल' और 'तितली'। इनका हिन्दी-उपन्यास की गति-विधि पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। 'कंकाल' की भाषा सुन्दर थी, किन्तु कुछ क्लिष्ट थी। साधारण पात्रों की बात-चीत के लिए यह अनुपयुक्त थी। कथा-प्रवाह और पात्रों में भी कुछ प्रौढ़ कला न मिली। 'तितली' का स्थान हिन्दी के उपन्यासों में ऊँचा होगा। इस कथा की भित्ति धरातल में थी। भारतीय समाज की वेदना और दुर्बलताएँ यहाँ सजीव रूप में दिखीं। 'तितली' का चरित्र-चित्रण भी उच्च-कोटि का था। प्रेमचन्द की कला का 'तितली' पर स्पष्ट प्रभाव था।

'तितली' पढ़ कर बरबस ही यह विचार मन में उठता है कि यदि 'प्रसाद' कुछ दिन और जीवित रहते तो 'कामायिनी' की तरह उपन्यास में भी शायद कुछ चिर-स्मरणीय चीज़ लिख जाते।

जैनेन्द्र हिन्दी के बढ़ते हुए कलाकारों में हैं। आगे हमको आपसे बहुत कुछ आशा है। अभी तक आप तीन उपन्यास लिख चुके हैं : 'परख', 'सुनीता', 'त्याग-पत्र।'

'परख' ने पहले हिन्दी-संसार की दृष्टि आपकी ओर फेरी। इस उपन्यास के वेश-विन्यास में आकर्षक सादगी थी। इसकी नायिका 'कट्टो' का हिन्दी में कुछ नाम भी हो गया है और चरित्र-चित्रण भी सुन्दर हुआ है। 'परख' में ध्यान आकर्षित करने का कुछ गुण था। चरित्र-चित्रण की सच्चाई, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण, भाषा की सादगी।

'सुनीता' में ये मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ अधिक उलझ गईं, जिसके कारण 'सुनीता' और 'हरिप्रसन्न' दो पात्रों का चित्रण गूढ़ और रहस्यमय हो गया। हमारे मन में यह भावना होती है कि लेखक कुछ अधिक गहरी बात कहना चाहता है, किन्तु उसे कह नहीं पाया।

'त्याग-पत्र' में हिन्दू-समाज की अन्तर्वेदना निहित है। जैनेन्द्रजी का सबसे अधिक शक्तिपूर्ण उपन्यास यही है। एक भारी कठिनता और अवसाद इस कथा में है—भारतीय नारी का विषम और दारुण जीवन जो पल-पल पर उसके अभिमान को कुचल डालना चाहता है। इस कथा-भाग के पीछे जैसे युग-युग की पीड़ा घनीभूत है, किन्तु आँसुओं में नहीं निकल पाती। समाज के विचारालय में 'त्याग-पत्र' नारी का कठिन आरोप है।

जैनेन्द्र पिछले वर्षों में आध्यात्मिकता की ओर अधिक जा रहे हैं। आशा है कला का आँचल छोड़ आप केवल दार्शनिक ही न रह जायँगे। 'त्याग-पत्र' हमें विश्वास दिलाता है कि हिन्दी-उपन्यास को आप अभी बहुत कुछ दे सकते हैं।

लगभग इसी श्रेणी के अन्य कलाकार भी उपन्यास के क्षेत्र में हैं : श्री० 'निराला', भगवतीचरण वर्मा और सियारामशरण गुप्त। इनकी ओर आलोचकों का ध्यान कुछ कम आकर्षित हुआ है, क्योंकि इनका कार्य उपन्यास के क्षेत्र तक ही परिमित नहीं। 'निराला' जी अब तक 'अप्सरा', 'अल्का', 'निरुपमा' आदि उपन्यास लिख चुके हैं। 'चमेली', अप्रकाशित उपन्यास का एक परिच्छेद फरवरी के 'रूपाभ' में निकला था। आपके चरित्र जटिल होते हैं ; आपकी भाषा में रस रहता है ; आपके कथानक में काफी आकर्षण रहता है। किन्तु फिर भी आप पहली श्रेणी

के उपन्यासकार नहीं समझे जा सकते। आपके कथानक में घटना-बाहुल्य रहता है; और आपके चित्रों में कोई केन्द्रित व्यवस्था नहीं। आपकी कथा डाँवाडोल लक्ष्यहीन-सी मानो भटकती हो। 'चमेली' का एक परिच्छेद जीवन की उग्रतर आलोचना है। ग्राम्य-जगत् के इस चित्र में काफ़ी शक्ति है :

'उतरता बैशाख। खलिहान में गेहूँ, जव, चना, सरसों, मटर और अरहर की रासें लगी हुई हैं। गाँव के लोग मड़नी कर रहे हैं। कोई-कोई किसान, चमार-चमारिन की मदद से, झाड़ी हुई रास ओसा रहे हैं। धीमे-धीमे पछियाव चल रहा है। शाम पाँच का वक्त। सूरज इस दुनिया से मुँह फेरने को है।......'

श्री० भगवतीचरण वर्मा का 'चित्रलेखा' शक्तिपूर्ण उपन्यास था। प्राचीन भारत के सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन का वह सजीव चित्र था। इसमें कुछ बहुत ऊँचे उठे चरित्र थे। मनुष्य जीवन से विलग हो मुक्ति नहीं पा सकता, यह इस कथा का इंगित है। अनातोले फ्रांस के Thais का भी यही कथा-प्रवाह है, किन्तु 'चित्रलेखा' का वातावरण इतिहास और उपनिषदों से निर्मित एकदम भारतीय है।

'तीन वर्ष' में वर्माजी आधुनिक समाज की ओर झुके। 'तीन वर्ष' जीवन के कटु अनुभव पर निर्भर समाज की उग्र आलोचना है। 'तीन वर्ष' जीवन का एक छोटा-सा कटु टुकड़ा है। इसके पात्र जीवन की जूठन हैं : मद्यप, वेश्याएँ, वेश्यागामी। किन्तु इनमें शिक्षित समुदाय से अधिक सच्चरित्रता और उदारता है।

अभी वर्माजी एक नया उपन्यास लिख रहे हैं जो जीवन का वृहत् विस्तृत चित्र होगा। वर्माजी हिन्दी-साहित्य में आज एक बड़ी जीवित शक्ति हैं।

श्री० सियारामशरण गुप्त में उपन्यासकार के स्वाभाविक गुण

हैं। आपकी कथा में सच्ची भारतीयता होती है; आपके दृष्टि-कोण में उदारता है। यदि वर्माजी मन उद्विग्न कर देते हैं, तो आप हमें शांति पहुँचाते हैं। आपकी कथा-शैली बहुत मँझी और प्रौढ़ है। आपकी उपमाएँ हमें विशेष सुंदर लगीं।

इस समय हिंदी में अनेक उपन्यासकार सजीव हैं: श्री चतुरसेन शास्त्री, ठाकुर श्रीनाथसिंह, श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी श्री वृन्दावनलाल वर्मा, श्रीमती उषादेवी मित्रा। अन्य नव-युवक लेखक भी हिंदी उपन्यास का भाण्डार भर रहे हैं।

पश्चिम में उपन्यास-कला में बड़े-बड़े परिवर्त्तन हो रहे हैं, जिनका अभी कोई प्रभाव हिंदी पर दृष्टिगोचर नहीं होता। सतोष की बात यह है कि हिंदी-उपन्यास भारतीय-जीवन का ही प्रतिबिम्ब है। स्वर्गीय प्रेमचंद ने ग्रामीणों और किसानों का जीवन अंकित किया था; उनके परवर्त्ती उपन्यास ने शिक्षित मध्य-वर्ग के समुदाय का गार्हस्थ्य जीवन अपनाया था।

हाल में ही श्री अज्ञेय ने 'शेखर' नाम का एक विस्तृत उपन्यास लिखा है। 'टेकनीक' के लिहाज़ से यह एक नयी वस्तु है। 'शेखर' एक ही व्यक्ति के जीवन का विस्तृत चित्र है। जो इसके प्रकाशित अंग हमारे देखने में आये हैं, उनसे मालूम होता है कि कथा का प्रभाव तो बहुत धीमा है, किन्तु प्रत्येक अंग सुगढ़ और शिल्पकला में ढला है। यह उपन्यास अंतर्मुखी है और इसकी गठन अंतर्जगत् के चित्रों की पंक्ति मात्र है।

हिंदी उपन्यास का इतिहास अभी अपेक्षाकृत नया है। किंतु इस थोड़े समय में ही उसने बहुत उन्नति की है। इसका अधिकतर श्रेय केवल एक कलाकार को है। हमें हर्ष है कि उस कलाकार के निधन से हताश न हो हिंदी उपन्यास तीव्र गति से आगे बढ़ रहा है।

ठाकुर श्रीनाथसिंह और श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी ने सफल सामाजिक उपन्यास लिखे हैं। श्री चतुरसेन शास्त्री और श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने ऐतिहासिक उपन्यास की दिशा में अच्छा प्रयास किया है। मध्य युग के काल-खंड को इन कथाओं ने अपनाया है। ऐतिहासिक उपन्यास में स्वर्गीय राखाल बाबू के 'करुणा' और 'शशांक' प्राचीन भारत के बड़े सुन्दर और सजीव चित्र हैं।

श्रीमती उषादेवी मित्रा के तीन उपन्यास निकल चुके हैं। आपकी अलंकार-बोझिल भाषा के अतिरिक्त आपका विशेष गुण स्त्री-स्वभाव की सूझ है। आपने उच्च श्रेणी की पात्राओं का अपनी कथाओं में चित्रण किया है। इस युग के कारण उपन्यास-क्षेत्र में आपका विशेष स्वागत होना चाहिये।

●

कहानी

प्रेमचन्द, कौशिक और सुदर्शन की कला में जिस गम्भीर और गहरी धारा से हिन्दी-कहानी बही थी, उसे छोड़ अब वह नई-नई शाखाओं में फूटकर कुछ 'विपथगा'-सी हो रही है। हिन्दी-कहानी किसी एक परिपाटी का दासत्व नहीं मान रही, यह आशा का चिह्न है। आधुनिक हिन्दी कहानी में प्रेमचन्द ने प्राण फूँके, 'प्रसाद', कौशिक और सुदर्शन ने उसे विकसित किया; अब वह जीवन-शक्ति से आकुल उन्नति के नये पथ खोज रही है।

हमारे प्रगतिशील गल्पकारों में जैनेन्द्रजी का नाम अग्रगण्य है। आप अनेक सुन्दर कहानी लिख चुके हैं। आपके कई संग्रह भी निकल चुके हैं। आपकी 'खेल' नामक कहानी से प्रसन्न हो कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने यहाँ तक कह डाला था कि 'हिन्दी में हमको रवि बाबू और शरत् बाबू अब मिले और एक साथ मिले!'

जीवन के बहुत उलझे हुए ताने-बानों से जैनेन्द्रजी बचते-से हैं। आपके उपन्यासों में भी थोड़े-से ही पात्र होते हैं। जीवन की झाँकी मात्र आपको रुचिकर है। उसी झाँकी द्वारा आप अपने गहनतम भावों को प्रकट कर देते हैं। गल्पकार का यही गुण होना चाहिये।

जैनेन्द्रजी ने अनेक ढंग की कहानी लिखी हैं। 'मास्टर साहब' कुछ बंगाली वातावरण की; 'एक रात' कुछ रूसी पुट

लिये ; प्राचीन राजकुमार और शिल्पकारों की जीवन-गुत्थियाँ ; रेल-यात्रा की रोचक घटनाएँ। आप जीवन के सभी क्षेत्र अपनाते हैं। टेकनीक आपका नवीन है, किन्तु आपकी कला की आत्मा भारतीय है। उन्नीसवीं शताब्दी में विदेशी कलाकारों का ऐसा नियम था कि पेंसिल और नोट-बुक लेकर घर से बाहर निकल पड़ते थे। जैनेन्द्रजी भी अपनी पेंसिल और नोट-बुक घर पर कभी नहीं भूलते।

जैनेन्द्रजी का कथानक सीधा और सुलभा हुआ होता है। मनोवैज्ञानिक गुत्थियों में ही कभी-कभी आप उलझ जाते हैं। जीवन का कोई एक अंग वह अपनाते हैं। जन्म-मरण की यहाँ समस्या नहीं। चरित्र-चित्र ही लेखक का ध्येय है। इन कहानियों का आदि-अन्त कुछ नहीं। 'फोटोग्राफी' और 'खेल' इसी शैली की कहानी हैं। पश्चिम में यह शैली 'चेकॉफ' के साथ लोकप्रिय हुई थी।

इधर दो-एक वर्ष से जैनेन्द्रजी की कला ने जो रूप लिया है, उससे चिन्ता होती है। अधिकाधिक आप दर्शन में फँसते जा रहे हैं। George Eliot की कला के लिए भी दर्शन घातक सिद्ध हुआ था। आपकी नई लम्बी कहानी 'त्याग-पत्र' पढ़कर हमको भारी संतोष हुआ। ऐसी व्यथा, कठिनता और स्वाभाविकता उच्च-कोटि के साहित्य में ही मिल सकती है।

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार उच्च-श्रेणी के आलोचक हैं। हिन्दी कहानी-साहित्य पर आपका निबन्ध अभूतपूर्व रूप से निर्भीक और गम्भीर था। आपने अनेक रोचक कहानी लिखी हैं। 'ताँगेवाला' नाम की कहानी हमको विशेष अच्छी लगी। आपने गल्प-कला के सम्बंध में शायद बहुत-कुछ सोचा है। आपकी 'क ख ग', 'एक सप्ताह', 'चौबीस घण्टे' आदि कहानियों

से यह स्पष्ट है। 'क ख ग' जीवन के तीन विभिन्न चित्र हैं। तीनों में रक्तपात और मृत्यु है। रेल, स्टेशनों और ग्राम्यजन का स्वाभाविक वातावरण है। टेकनीक उत्कृष्ट है। 'क ख ग' यह तीनों चित्र मिलकर जीवन का व्यापक चित्र बन जाते हैं।

'एक सप्ताह' पत्रों द्वारा वर्णित कहानी है। पहाड़ के ग्रीष्म जीवन का यहाँ रोचक परिचय मिलता है। कथानक नहीं के बराबर है। सप्ताह भर में एक युवक प्रेम, निराशा सभी अनुभव कर वापस लौट आता है।

'चौबीस घण्टे' में भूकम्प द्वारा एक दिन में घटित परिवर्तन का हाल है।

समय और कला का कहानी में मूल्य कम होता जा रहा है। जन्म-मरण पर्यन्त मनुष्य-जीवन रोचक नहीं होता। जीवन के कुछ मूल्यवान् क्षण लेकर ही आधुनिक कलाकार उन पर तीव्रतम प्रकाश डालता है।

चन्द्रगुप्तजी कहानी के बाह्य रूप में अधिक लीन रहे हैं। टेकनीक में किये आपके अन्वेषण और अनुसंधान हिन्दी-कहानी की उन्नति में विशेष सहायक होंगे।

'अज्ञेय'जी की कला में बेहद बल और शक्ति है। आपके हृदय में अग्नि प्रज्वलित है, उसी की ज्वाला आपकी कला में भी झलक जाती है। हिन्दी-कहानीकारों में आपकी कला में ही सबसे अधिक विप्लव और क्रान्ति की भावना है। आपने नवीन पाश्चात्य कथा-शैली को अपनाया है। उसकी स्पष्ट छाया 'प्रति-ध्वनियाँ' और 'कड़ियाँ' शीर्षक कहानियों में है। मनुष्य के मन में अनेक असम्बद्ध भाव उठते रहते हैं—अनेक चित्र एक साथ बनते, बिगड़ते हैं। उन्हीं का चित्रण इन कहानियों में हुआ है। 'कड़ियाँ' हिन्दी-साहित्य की निधि होगी। मनुष्य-मात्र की

बिखरी भावनाओं को—उसकी आशा, निराशा, हर्ष, उन्माद को—कलाकार ने यहाँ बटोरकर रखा है। बार-बार उसके खींचे शब्द-चित्र हमारे मन में घूम जाते हैं।

'अज्ञेय'जी में काव्य का अंश भी यथेष्ट मात्रा में है। वह आपकी 'अमर-वल्लरी' नाम की कहानी में प्रकट हुआ है। पीपल के पेड़ ने जीवन के अनेक दृश्य देखे हैं। शताब्दियों से वह प्रहरी की भाँति सिर उठाये यहाँ खड़ा है। अमर-वल्लरी उसके कण्ठ की माला बनी हुई है। किन्तु पीपल अब वृद्ध हुआ। उसकी धमनियों में रक्त सचार धीमा पड़ गया है। जीवन के अनेक दृश्य उसने देखे हैं। नित्य प्रभात और सन्ध्या की मधुवेला में स्त्री पुरुप आकर उसके ऊपर पत्र-पुष्प चढ़ा जाते हैं। वरदान की इच्छुक ललनाएँ उसका आलिंगन करती हैं, किन्तु वह अशोक की भाँति फूलकर उन्हें उऋण नहीं कर सकता। जीवन के कितने रहस्य उसके हृदय में छिपे पड़े हैं?

कुछ इस ही ढंग की कहानियाँ हाल में श्री यशपाल ने लिखी हैं। आपकी कहानियों की पटभूमि विशेष सुन्दर बनती है।

श्रीयुत भगवतीचरण वर्मा की कहानियों में विद्रोह-भावना और एक प्रकार की उच्छृङ्खलता-सी है। नवीन शिक्षा और आविष्कारों के साथ जो युग भारत में आया है, उसके आप प्रतिनिधि हैं। इस नवयुग की हलचल, अशान्ति और उतावला-पन आपकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित हैं। आपके कहानी-संग्रह 'इन्सटॉलमेन्ट' का शीर्षक ही इसका द्योतक है। चाय की प्याली के साथ आपकी प्रत्येक कहानी का आरम्भ होता है। 'कार', सुरा-पान, अनियन्त्रित प्रेम, 'इन्सटॉलमेन्ट' द्वारा ऋण-परि-शोध—यह इस मशीन-युग की साधारण बातें हैं। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक संबंध की मीमांसा में आप विशेप व्यस्त रहते हैं।

डा० धनीराम 'प्रेम' भी इस नवीन युग के वाहकों में हैं। आपकी कहानी 'डोरा' काफी लोकप्रिय हुई। सहशिक्षा और पाश्चात्य रीति-नीति से भारतीय सामाजिक जीवन में जो क्रान्ति हो रही है, उसकी छाया आपकी कृतियों में है।

हिन्दी-कहानी हमारे जीवन से कटकर अलग नहीं हो गई, यह संतोष की बात है।

श्री अन्नपूर्णानन्द बीती हुई बातों पर सुन्दर ढंग से विनोद-पूर्ण रचना करते हैं। आपकी भाषा में स्वाभाविक प्रवाह होता है। कहानीकार के आप में दैवी गुण हैं। हमें खेद है कि अपनी शक्ति का आप पूर्ण प्रयोग नहीं करते।

आज हिन्दी-कहानी की प्रगति उमड़ी हुई वर्षा-नदी के समान है। अनेक सुप्रसिद्ध कहानीकारों के नाम मन में उठते हैं। कई वर्षों से श्री कृष्णानन्द गुप्त सुन्दर कहानी लिखते आ रहे हैं। आपकी कहानी सदैव रोचक होती है। आपका कथानक स्वाभाविक और चरित्र-चित्रण कुशल होता है। श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने अच्छी कहानी लिखी हैं। 'उग्र' ने कुछ वर्षों का मौन तोड़कर फिर लेखनी सँभाली है। पं० विनोदशंकर व्यास में भावुकता और श्रीयुत इलाचन्द्र जोशी में कला के प्रति विशेष आकर्षण है। हमारे विचार से आपकी प्रतिभा के बौर फलरूप में परिणत न हो पाये।

जो और किसी युग में कहानी नहीं लिखते, वे भी आज कहानी लिख रहे हैं। 'पन्त' अथवा 'निराला' सर्वप्रथम तो कवि हैं। पन्तजी की 'पाँच कहानियाँ' में सुन्दर रेखा-चित्र हैं। भाषा प्रांजल और प्रवाहमयी है। इन कहानियों को पढ़ने में गद्य-काव्य का आनन्द आता है। शिक्षित समुदाय के विचार-व्यवहार की पन्तजी को सहज सूझ है। आपकी कला में तितली-पंखों-सी चमक

है। हमें दुःख है कि इन कहानियों में भारतीय जीवन की निराशा के अन्तरतम तक पन्तजी नहीं पहुँचे।

हिन्दी-कहानी में चारों ओर आज जीवन और जागृति के चिन्ह हैं। किन्तु इस निबंध में हम केवल नवीन धाराओं की प्रगति देख रहे हैं, आधुनिक हिन्दी-कहानी का इतिहास नहीं लिख रहे।

इस जागृति-काल में अनेक स्त्री-कहानीकार हुई हैं। शिवरानी देवी, कमला चौधरी, उषादेवी मित्रा आदि। शिवरानी देवी प्रेमचन्द के पथ पर चल रही हैं—जो स्वाभाविक है। श्रीमती कमला चौधरी की कहानियों में काव्य-प्रेरणा, सरलता और उल्लास है। गृह-जीवन आपका विशेष क्षेत्र है। स्त्रियों के दुःख आप सहज ही और मार्मिक भाषा में व्यक्त करती हैं। 'साधना का उन्माद' और 'मधुरिमा' में जो स्त्री-हृदय की सूझ है, वह पुरुष लेखकों की परिधि के सर्वथा बाहर है। उषादेवी मित्रा की भाषा में काव्य और लालित्य रहता है। आपको 'जीवन-संध्या' शीर्षक कहानी हमको अच्छी लगी। श्रीमती होमवती देवी नें 'विशाल भारत' में कुछ सुन्दर कहानी लिखी हैं। आपकी रचनाओं में 'नारीत्व' सुलभ सुकुमारता और कोमलता रहती है।

हिन्दुस्तानी के आन्दोलन से हिन्दी-साहित्य को विशेष लाभ हुआ है। अनेक उर्दू लेखकों ने हिन्दी में लिखने का प्रयत्न किया है। इनमें प्रो० अहमद अली और श्रीयुत सज्जाद जहीर के नाम उल्लेखनीय हैं। प्रो० अहमद अली की कहानी 'हमारी गली' हिंदी के लिए एक नई चीज़ थी। गली की दुकानों के, दुकानदारों के, राहगीरों के इसमें सूक्ष्म चित्र हैं। यथार्थवाद का और युरोपीय कहानी की नवीततम 'टेकनीक' का यह उत्कृष्ट नमूना है। इसकी

भाषा भी कहीं-कहीं खूब ऊँची उठी है—विशेषकर अजों की प्रतिध्वनि के वर्णन में।

प्रेमचंदजी ने हमारे ग्राम्य और गार्हस्थ्य-जीवन पर ज्योति की वर्षा की थी। आपकी अधिकतर कहानियाँ घटना-प्रधान थीं। मनुष्य के हृदय की यहाँ सच्ची और अच्छी परख थी। हिंदी कहानी कई वर्ष तक आपके दिखाये पथ पर चली। जीवन-प्रेरणा और विकास के नियमों से उत्सुक अब वह नई दिशाओं की ओर उन्मुख हो रही है।

हिंदू परिवार में और सामाजिक जीवन में जो परिवर्तन हो रहा है, उसका प्रतिबिम्ब हमको इन नये कहानीकारों की रचना में दीखता है। हमारे जीवन-पथों में जो नवीन विचार-धारायें बह रही हैं, विप्लव और विद्रोह की जो प्रबल भावनाएँ जागृत हुई हैं—उनका यहाँ भविष्य के लिए इतिहास लिखा मिलेगा।

किन्तु मूक जनता को भूलकर केवल मध्य-वर्ग की मनोवृत्तियों के अन्वेषण में हिन्दी कहानी का तन्मय हो जाना अहितकर होगा।

कला की दृष्टि से हिन्दी-कहानी ने अनेक अनुसंधान किये हैं। मनोविज्ञान और यथार्थवाद की ओर हमारा ध्यान अधिक खिंचा है। कथा-शैली में अनेक परिवर्तन हुए हैं। बहुत-कुछ हमने खो दिया है, किन्तु और भी बहुत-कुछ पा लिया है।

●

आलोचना

साहित्य के शैशव में आलोचना का कोई स्थान नहीं। जब साहित्य प्रौढ़ हो जाता है, तभी आलोचना की उन्नति होती है। पहले काव्य-सृष्टि होती है, फिर आलोचक पैदा होते हैं। कहते हैं पहले मनुष्य के मुख से कविता निकली थी, फिर गद्य।

हिंदी का साहित्य बहुत पुराना है। किसी न किसी रूप में आलोचना भी हिंदी साहित्य में रही है। आधुनिक हिंदी साहित्य प्रसव-काल की पीड़ा भूल, एक नये जग को नेत्र खोलकर देख रहा है। आलोचना का क्षेत्र भी अब विस्तृत हो रहा है। सत्साहित्य के लिए अच्छे साहित्यादर्श जरूरी हैं। उन्हीं के निर्माण से आलोचक अपने साहित्य की भारी सहायता कर सकता है।

आलोचक का कार्य बड़े महत्व का है। ऊँचे आसन पर बैठकर दंड और इनाम देनेवाला पदाधीश वह नहीं है। सत्य की खोज में वह अनवरत लीन तपस्वी है। ऑस्कर वाइल्ड ने आलोचक को कलाकार कहा है। वह भी सत्य, शिव और सुन्दर की खोज कवि की-सी लगन से करता है। अपनी अनुभूति और कल्पना के सहारे वह काव्य की आत्मा तक पहुँचने का प्रयत्न करता है। यही आदर्श हिंदी के आलोचकों को अपने सामने रखना है।

हिन्दी आलोचना के तीन स्पष्ट क्रम-विभाग हैं। पहले काल में पुराने आचार्यों के रस और अलंकार सम्बन्धी नियम मान कर हम चले। दूसरे काल में नई कसौटियों की ओर भी हमारी

कुछ दृष्टि गई। अब हम नये साहित्य को नये ही नाप और बाटों से तोल रहे हैं।

रीतिकाल के काव्य में आलोचना का काफ़ी संमिश्रण था। अधिकतर कवि नायक, नायिका भेद अथवा अलंकार और पिंगल समझाने के लिए कविता लिखते थे। इन ग्रन्थों से अलंकार आदि समझना तो कठिन है, किन्तु कविता कभी-कभी काफी मीठी हुई है। मालोपमा का इतना अच्छा उदाहरण हमें आज तक नहीं मिला :

'घन से, तम से, तार से, अंजन की अनुहार।
अलि से, मावस रैन से, बाला तेरे बार।

मतिराम का 'ललित ललाम' राजा यशवंतसिंह का 'भाषा-भूषण' पद्माकर का 'पद्माभरण', दास का 'छंदोर्णव पिंगल', अथवा 'काव्य निर्णय' इसी ढंग के काव्य ग्रन्थ हैं।

हिन्दी गद्य के विकास के साथ ही आलोचना भी आगे बढ़ी और काव्य के गुण-दोष विवेचन का सूत्रपात हुआ। एक बार भद्दे, पीले काग़ज़ पर मोटे, सटे अक्षरों में छपी ग्वाल कवि की भूमिका हमने पढ़ी थी, जो अधिक कुछ समझ में न आई। ब्रजभाषा गद्य का वह आकर्षक नमूना था। भारतेन्दु ने 'कवि वचन सुधा' और अन्य पत्रों मे हिन्दी आलोचना को दृढ़ नींव पर रखा। भारतेंदु रसिक और काव्य-प्रेमी व्यक्ति थे। ब्रजभाषा की फुटकर कविताओं का आपने एक बड़ा संग्रह किया जो पालग्रेव की गोल्डन ट्रेज़री की तरह पुराने हिंदी काव्य का अखंड कोष है।

पुरानी परिपाटी के आलोचकों में अग्रगण्य पं० पद्मसिंह शर्मा, ला० भगवानदीन 'दीन' और पं० कृष्ण बिहारी मिश्र हैं।

बिहारी पर पं० पद्मसिंह शर्मा का 'संजीवन भाष्य' अनमोल वस्तु है। 'यह खाँड की रोटी जिधर से तोड़ो, उधर से ही मीठी है।' आपके गद्य में उर्दू और फ़ारसी की स्थान-स्थान पर छींटें स्वांति वर्षा-सी लगती हैं। हमें खेद है कि 'भाष्य' अधूरा ही रह गया।

बिहारी और केशव के पाठ सुलझाने में लाला भगवानदीन ने भगीरथ प्रयत्न किया। केवल न जाने क्यों आप बिहारी के विचित्र अर्थ भी निकालते थे। वाद-विवाद में पड़ कर आप कड़वी और चुभनेवाली बात भी कह डालते थे। बिहारी का पाठ सुधारने में रत्नाकर का काम अंग्रेज़ी आलोचकों की जोड़ का था। 'बिहारी रत्नाकर' के ढंग के, शेक्सपियर आदि कवियों पर अंग्रेज़ी में अनेक ग्रथ हैं।

पुरानी कसौटियों पर जिस संयत और सुंदर ढंग से पं० कृष्ण बिहारी मिश्र ने काव्य-परीक्षा की, उसका हिंदी में दूसरा उदाहरण नहीं। 'देव और बिहारी' तुलनात्मक आलोचना का हिंदी में अब भी सब से अच्छा ग्रंथ है। मतिराम से मिश्रजी को विशेष स्नेह है। आपके पांडित्य की मिश्री में कोई बाँस की फाँस नहीं।

इस प्राचीन परिपाटी के विरुद्ध हमारे कई आरोप हैं। काव्य की आत्मा रस है। अलंकार गिन कर काव्य की श्रेष्ठता निर्धारित नहीं की जा सकती। कभी-कभी तो अलंकार की अधिकता खटकती है। पद्माकर विशेष अपराधी हैं। बिहारी ने कहा ही है :

भूषण भार सँभारिहैं, क्यों यह तन सुकुमार ?
सीधे पाँव न धर परत, सोभा ही के भार ?

बिना व्यक्तिगत् आक्षेपों के यह पंडितगण कम बात कर सकते थे जैसे 'मिश्र जी भंग की तरंग में रह गये' इत्यादि।

किसने किससे भाव चुरा लिये, इस विषय से भी वह बड़े परेशान रहे। शेक्सपियर तो अपने नाटकों के सभी प्लाटों के लिए दूसरों का ऋणी रहा!

एक नई संस्कृति के संपर्क से हमारे देश के जीवन में नये प्राण आ गये। गहरी निद्रा से जाग कर हमारे साहित्य ने आँखें खोलीं और एक नये ही जग में अपने को पाया। इस काल के आलोचक अतीत के गृह-द्वार पर खड़े भविष्य का अरुणोदय देख रहे हैं। प्राचीन साहित्य का पूरा ज्ञान इन साहित्यकारों को है, किंतु उनके पांडित्य में एक नवीन सजीवता और आकर्षण है।

हिंदी नव साहित्य के इस उपःकाल में पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी एक भारी शक्ति थे। कुछ इसी प्रकार का प्रभाव डा० जॉनसन का अपने समकालीन साहित्य पर था। 'टाइम्स' के संपादक का भी कुछ ऐसा ही मान होता है। 'सरस्वती' के संपादक की हैसियत से द्विवेदीजी ने दृढ़ हाथों से हिंदी साहित्य का संचालन किया। सदा ही द्विवेदीजी के निर्णय ठीक रहे, यह तो नही कहा जा सकता। किंतु आपकी संरक्षिता में हिंदी खूब फली-फूली।

मिश्रबंधु, बा० श्यामसुंदरदास और प० रामचंद्र शुक्ल इसी श्रेणी में है। मिश्र-बंधुओं ने हिंदी-साहित्य का दूसरा इतिहास खोज और परिश्रम से लिखा जिसने 'शिवसिंह सरोज' का स्थान लिया, हिंदी कवियों का श्रेणी-विभाग किया और 'नवरत्न' लिख कर भूलती हुई कविता को फिर से लोकप्रिय बनाया। मिश्र-बंधुओं में साहस और स्वतंत्रता प्रचुर मात्रा में थे, यद्यपि अधिक गहराई तक वे न पहुँच पाये।

बा० श्यामसुंदरदास ने हिंदी साहित्य में बड़ी खोज की है और झगड़ों से बचकर चले हैं। देव और बिहारी के झगड़े

में हिंदी के अनेक साहित्यिक खिंच आये और आपस में काफी गाली-गलौज भी हुआ। अब वर्षों बाद मौन तोड़कर बाबूजी ने देव की सराहना की है। आपके जीवन के दो काम बहुत महत्व के हैं : नागरी प्रचारिणी की स्थापना और शब्द-सागर। नागरी प्रचारिणी की तुलना रायल सोसायटी से और शब्द-सागर की न्यू इँगलिश डिक्शनरी से हो सकती है। बा० श्यामसुंदरदास ने अनेक ग्रंथों की खोज और संपादन में सभा का हाथ बँटाया है। नाट्य-शास्त्र से आपको विशेष दिलचस्पी रही है। 'साहित्यालोचन' में आपने आलोचना-शास्त्र का नवीन पद्धति पर निरूपण किया।

पं० रामचंद्र शुक्ल का हिंदी आलोचना में विशेष स्थान है। आपके व्यक्तित्व की गंभीरता से हृदय में सहज ही श्रद्धा हो आती है। आपकी रुखाई से कुछ चिढ़ भी होती है। इतनी गंभीरता और गहराई तक हिंदी का और कोई आलोचक नहीं पहुँचा। आपने हिंदी साहित्य का काल-विभाग। किया तुलसी, जायसी और सूर की पांडित्यपूर्ण और अभूतपूर्व आलोचना की और काव्य के अंतरतम तक पैठने का निरंतर प्रयत्न किया। हमें खेद है कि हिंदी के नये कवि और लेखकों से आपको सहानुभूति नहीं, और कहीं-कहीं तो आपकी लेखनी में आवश्यकता से अधिक कड़वाहट आ गई है।

नव युग और साहित्य के साथ-साथ नये पारखी भी पैदा हो रहे हैं। पुरानी काव्य-कसौटियों से नये साहित्य की ठीक परख नहीं हो सकती। कहते हैं कि पुरानी शराब नई बोतलों में न भरनी चाहिये ; बोतल टूट जाती है।

इस बार भी नेतृत्व 'सरस्वती' संपादक के हाथ रहा। पं० पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी की आँख 'विश्व साहित्य' की ओर

लगी थी। आपका दृष्टिकोण विस्तृत था और नये आलोचनादर्श आपके सामने थे। कहते हैं कि 'निराला' जी की कविताओं से बख़्शीजी बड़े चकित हुए थे; किन्तु पंत की कविताएँ भी तो धारावाहिक रूप से 'सरस्वती' के पहले पृष्ठ पर निकलती थीं। 'हिंदी साहित्य-विमर्श' में बख़्शीजी ने एक नये दृष्टिकोण से हिंदी साहित्य का सिंहावलोकन किया और विश्व-साहित्य की तुला में हिंदी को तोला।

हिंदी के नये काव्य की अनुभूतिपूर्ण सूझ पं० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी को है। प्रति वर्ष जो आप 'विशाल भारत' में नये काव्य-ग्रंथों की आलोचना करते हैं, उसमें आपके ही बताये तीन गुण—कल्पना, चिंतन, अनुभूति—समान मात्रा में बराबर मिलते हैं।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी गम्भीर अध्ययन, मनन और भावुकता से नये और पुराने साहित्य की आलोचना करते रहे हैं। आपकी इस साधना का फल हिंदी को आगे चलकर अवश्य मिलेगा।

'विश्व भारती' में 'हिंदी कहानी साहित्य' पर जो लेख श्री चंद्रगुप्त विद्यालंकार ने पढ़ा था, वह हिंदी के लिए एक बिल्कुल नई चीज़ था। आदर्श आलोचक के अनेक गुण इस लेख में हमें मिले—साहस, सच्चाई और शैली का ओज। इस लेख में हिंदी साहित्यकारों के छोटे-छोटे नखचित्र हमें विशेष अच्छे लगे। प्रेमचंदजी की बड़ी-बड़ी मूछें, स्वर ऊँचा करके हँसने की आदत और ग्रामीणों का सा वेष; 'प्रसाद' के जीवन-रथ की परिधि, घर से दशाश्वमेध, दशाश्वमेध से घर—चल-चित्र की भाँति यह दृश्य हमारी आँखों के सामने घूम गये।

सत्साहित्य की सृष्टि में हिंदी के पत्रकारों का हाथ बहुत कुछ रहेगा। नये लेखकों को वही घटा-बढ़ा सकते हैं। किसी ज़माने

में 'सरस्वती' और 'माधुरी' से हिंदी को काफी प्रेरणा मिली थी। आजकल 'विशाल भारत' बड़ी तत्परता से नये गुणी खोज रहा है। 'हंस' अपने जीवन के आरंभकाल से अब तक गुटबंदियों से बच कर चला है। जिस साहित्य के प्रचार के निष्पक्ष आलोचक और गुण-ग्राहक हैं; उस साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है। 'गुन न हिरानो गुनगाहक हिरानो है।'

आजकल हिंदी साहित्य में भयंकर गुटबंदी, पक्षपात और वैमनस्य हैं। इन तीन कमजोरियों से बच कर चलें ऐसे आलोचक देखने की हमारे मन में अभिलाषा है। हिंदी संपादकों ने यदि निष्पक्षता से काम लिया तो हमारा साहित्य लम्बे डग भरेगा।

आलोचक तो सत्य की निरंतर अनवरत खोज करता है। यही लक्ष्य उसके सामने है। आशा है हिंदी के आलोचक पथ-भ्रष्ट न होंगे। तभी पूर्व में जो झुटपुटा आलोक हमें दीख रहा है, फैलकर हिंदी जग को भर देगा।

●

रंग-मंच

हिन्दी की अभी तक कोई स्वतंत्र रंग-मंच-परिपाटी नहीं बनी, जिसके अनुकूल हमारे नाटकों की रचना हो। हमारे साहित्यिक नाटक वाचनालय की शान्ति में ही रुचते हैं। नाटक के नाम से जो रचनाएँ रंग-मंच पर खेली जाती हैं, वे साहित्यिक नहीं होतीं। वे पारसी रंग-मंच की दूषित प्रणाली का अनुकरण करती हैं। हिन्दी की साहित्यिक जनता दिन-प्रति दिन बढ़ रही है और सफल साहित्यिक नाटकों का अभिनय देखने को उत्सुक है। ऐसी दशा में हमारे साहित्यकारों का यह कर्तव्य हो जाता है कि रंग-मंच की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए वे नाटक लिखें। हमें हर्ष है कि हमारे तरुण नाट्यकार इधर ध्यान दे रहे हैं।

भारतीय नाटक की प्राचीन परम्परा लुप्तप्राय है। संस्कृत के सुन्दर, सुगठित नाटक तो हमें अब भी पढ़ने को मिलते हैं, किन्तु पुराने नाट्य-गृहों की परम्परा सर्वथा खो चुकी है। संस्कृत के अधिकतर नाटक राज-सभाओं के अभिनय की चीज़ थे। शाकुन्तल, मालती माधव, मुद्रा-राक्षस, मृच्छकटिक आदि राज-सभाओं के नाटक थे। शायद क्षुद्रक, मालव, लिच्छवि, शाक्य आदि गण-राज्यों में जन-साधारण के रंग-मंच की परम्परा रही हो, जिसका अब कोई चिह्न भी अवशिष्ट नहीं।

ग्रीस के नाट्य-गृहों में हजारों दर्शक बैठ सकते थे। वहाँ नाटक देखना धर्म-कार्य समझा जाता था, क्योंकि नाट्य-द्वारा

वे देवता की अर्चना करते थे। इसी प्रकार शेक्सपियर के सम-कालीन नाट्य-गृहों में जनता अबाध वेग से उमड़ती थी। भारतीय चित्रकला में हमें यह भावना मिलती है। कहते हैं कि अजन्ता की दीवारों के चित्र बौद्ध भिक्षुओं ने बनाये थे। हमारे नाट्य-गृहों में जो जनता उमड़ती है, वह साहित्यिक नाटक से अभी कितनी दूर है ?

भारतेन्दु आधुनिक हिन्दी रंग-मंच के जनक थे। आपने अनेक नाटक लिखे और भारतेन्दु-नाटक-मंडली ने उनका सफल अभिनय भी किया। इस रंग-मंच ने संस्कृत की परिपाटी को फिर से जीवित किया। 'सत्य हरिश्चन्द्र' हमें सस्कृत के नाटकों का स्मरण दिलाता है। इसका रुख बीते हुए युग की ओर है। 'भारत-दुर्दशा' और 'प्रेम-योगिनी' आदि में आधुनिक समाज का प्रतिबिम्ब है। 'चन्द्रावली' वास्तव में काव्य है, जिसका कलेवर मात्र नाटक का रूप लिये है। भारतेन्दु की साधना ने हिन्दी रंग-मंच को जीवन-शक्ति दी, किन्तु फिर भी वह पनप न सका। साहित्य का रंग-मंच से यह मिलन क्षणिक ही रहा।

हिन्दी रंग-मंच को जीवित करने का दूसरा प्रयास व्याकुल भारत-नाटक-मंडली ने किया। व्यवसायी मंडलियों में उर्दू का का ही बोलबाला था। उनके अभिनेता कभी हिन्दी का व्यवहार भी करते, तो विकृत रूप में ; देश की प्राचीन संस्कृति से इनका कोई सम्पर्क न था। 'व्याकुल' का नाटक 'बुद्धदेव' बहुत लोक-प्रिय हुआ। इस नाटक में शुद्ध हिन्दी का व्यवहार हुआ था और भारतीय संस्कृति की भी सच्ची छाप थी। व्याकुल-मंडली के अभिनेता हिन्दी शब्दों का उच्चारण भी शुद्ध करते थे।

इसी समय स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों का हिन्दी में अनुवाद हुआ और कालेज यूनिवर्सिटी के छात्रों में इनका

खूब प्रचार हुआ। अव्यवसायी मंडलियों ने स्व० राय महोदय के 'शाहजहाँ', 'मेवाड़-पतन' आदि नाटकों का वर्षों अभिनय किया। इस प्रकार हमारे बीच शुद्ध अभिनय की एक क्षीण परिपाटी जीवित बनी रही।

पारसी नाटक-मंडलियों का ध्यान भी हिन्दी की ओर फिरा। 'न्यू ऐलफ्रड' नाटक-मण्डली के लिए बरेली के पं० राधेश्याम कविरत्न ने 'वीर अभिमन्यु,' 'भक्त प्रह्लाद' आदि नाटकों की रचना की। इनकी भाषा हिन्दी अवश्य थी, किन्तु इन नाटकों में प्रगति का चिह्न मात्र भी न था। ये पारसीक प्रथा की केवल हिन्दी उल्था थे। इन मंडलियों का अभिनय जीवन-हीन, विकृत, परिपाटी-ग्रस्त था। पारसी रंग-मंच हमें जीवन से दूर किसी मिथ्या-जग में पहुँचाता था। वास्तविकता से यह अभिनय कोसों दूर था।

पं० माखनलाल चतुर्वेदी का 'कृष्णार्जुन युद्ध' हिन्दी रंग-मंच के इतिहास में एक स्मरणीय घटना थी। इस नाटक के अनेक सफल अभिनय साहित्य-समितियों ने किये। 'कृष्णार्जुन युद्ध' में साहित्यिकता के साथ-साथ नाट्य-गुण विशेष मात्रा में मौजूद था। पं० बदरीनाथ भट्ट अधिकतर प्रहसन लिखते थे। आपकी नाटिका 'चुंगी की उम्मेदवारी' हास्य में ओत-प्रोत है। हास्यात्मक नाटक का वह प्रखर, निर्मल स्वरूप अभी हिन्दी में नहीं आया, जिसके अभ्यस्त हम शॉ आदि की नाट्य-कला से हो गये हैं।

'प्रसाद' के साथ हम हिन्दी नाटक के इतिहास का नया पृष्ठ पलटते हैं। 'प्रसाद' गम्भीर, सुसंस्कृत और चिन्तनशील व्यक्ति थे। आपने गम्भीर, साहित्यिक नाटकों की तन्मयता से रचना की। आपकी ऐतिहासिक खोज सराहनीय थी। किंवदन्तियों पर आप कभी निर्भर न रहते थे। अतः, 'नाग-यज्ञ,' 'अजातशत्रु,

'चन्द्रगुप्त', 'स्कन्दगुप्त', 'ध्रुव स्वामिनी' आदि आपके नाटक हमारे प्राचीन इतिहास को बड़ी देन है। मेरा अनुमान है कि इन नाटकों का अच्छा अभिनय भी हो सकता है, किन्तु इनकी क्लिष्ट भाषा से अभिनेता कुछ भय खाते हैं। कम से कम विद्यालयों की हिन्दी-उर्दू मिश्रित दर्शक-मंडली इस भाषा के लिए तैयार नहीं। एक अनुशासित साहित्यिक जनता ही इन नाटकों के अभिनय में योग दे सकती है। 'प्रसाद' की कृपा से हमारे भंडार में उच्च-कोटि के साहित्यिक नाटक हैं। किन्तु कोई विशिष्ट रंग-मच उनके अनुरूप हमारे पास नहीं। 'कामना', 'एक घूँट' आदि का अभिनय हम अब भी कर सकते हैं, किन्तु अभी तक इनका जीवन वाचनालय और क्लास-रूम तक ही सीमित है।

इसी कोटि में कवि श्री पन्त का नाटक 'ज्योत्सना' भी आता है। उच्च कोटि की पाठ्य-सामग्री तो यह रहा है, किन्तु इसके अभिनय का कहीं सफल प्रयास हुआ हो, यह हमें ज्ञात नहीं। इस कार्य को हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन सफलतापूर्वक सम्पादित कर सकता है। वार्षिक अधिवेशन के किसी अवसर पर कवि की देख-रेख में इस नाटक का अभिनय हो, तो हिन्दी रंग-मंच के विकास में हमें अनन्य सहायता मिले।

हिन्दी में पिछले वर्षों में नाटक तो खूब लिखे गये हैं, किन्तु उनके अभिनय कम हुए हैं। स्वर्गीय प्रेमचन्द, श्री सुदर्शन, पं० गोविन्दवल्लभ पन्त आदि सज्जन नाटककारों के रूप में हमारे सामने आ चुके हैं। तरुण लेखकों में 'उग्र', 'अश्क', पं० उदयशंकर भट्ट आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। 'उग्र' का नाटक 'महात्मा ईसा' उनकी गंभीरतम् कृति है और विषय के अनुरूप ही उसकी महत्ता भी है। 'ईसा' का हास्य बहुत निर्मल और मनोरम है।

नवयुग के नाट्यकारों के लिए हम यह तो अवश्य ही कह सकते हैं कि उनके नाटक अभिनय के लिए लिखे गये हैं, किंतु हिंदी का कोई स्वतन्त्र रंग-मंच नहीं, इस कारण अभी तक वे सजीव नहीं हुए। भारत के उन्नतिशील चित्रपट का प्रभाव रंग-मंच पर भी पड़ेगा। विशेषतः 'न्यू थियेटर्स' के यथार्थवादी अभिनय का प्रभाव अवश्य हिंदी के अभिनेताओं पर पड़ेगा। इस प्रकार हिंदी-नाटक क्रमशः जीवन के निकट आ रहा है। हम इबसेन, शॉ, गॉल्जवर्दी के नाटक पढ़ते हैं। पाश्चात्य चित्र-पट की प्रगति देखते हैं। नये आदर्श हमारे सामने हैं। कब तक हम पारसी-रंग-मंच-प्रणाली के दास बने रह सकते हैं? एक उन्नति का मार्ग रेडियो ने हमारे बीच खोल दिया है। हमें हर्ष है कि कुछ साहित्यिकों के नाटक रेडियो पर अभिनीत हुए हैं।

रंग-मंच का विकास व्यवसायी दल नहीं करेंगे। उसका नेतृत्व साहित्यिक ही ले सकते हैं। छात्र-मंडलियाँ और अन्य व्यवसायी-दल संक्षिप्त नाटक सफलता-पूर्वक खेल सकते हैं। हमें हर्ष है कि हिंदी-संसार का ध्यान एकांकी नाटकों की ओर गया है। श्री भुवनेश्वर वर्मा का 'कारवाँ' और रामकुमारजी का संग्रह 'पृथ्वीराज की आँखें' हमारे सामने हैं। 'हंस' ने भी कुछ पहले एक विशेषांक निकाला था जिसमें केवल एकांकी नाटक थे।

पिछले वर्ष श्री जगदीशचंद्र माथुर के दो अति सुंदर नाटक 'रूपाभ' में निकले; 'भोर का तारा' तथा 'जय और पराजय।' 'भोर के तारे' का प्रयाग और आगरा में बहुत सफल अभिनय हुआ और 'जय और पराजय' से भी वही आशा है। इस श्रेणी के नाटकों की हिंदी रंग-मंच के विकास के लिए बड़ी आवश्यकता है।

हिंदी रंग-मंच के भविष्य की कुछ हम कल्पना कर सकते हैं। भारतीय जनता की अनुभूतियाँ और आशाएँ इस सजीव रंग-मंच में केंद्रित होंगी—भारतीय जीवन के वे निकट होंगी। उसकी भाषा देश के प्रगतिशील जन-समाज की सहज बोधगम्य होगी। उसकी वाणी में जीवन के प्रति आलोचना-भाव होगा। केवल पुराने बेलबूटों की वह रंग-मंच नकल न करेगा। प्राण-भार से आकुल इस रंग-मंच की लोक-प्रियता का अनुमान हम कठिनता से कर सकते हैं। यही रंग-मंच पैरीक्लीज के ग्रीस और शेक्सपियर के इंग्लैण्ड में रचित नाट्य-साहित्य की समता कर सकेगा और कालिदास की मर्यादा का उत्तराधिकारी बनेगा।

किस प्रकार हम उस रंग-मंच की सृष्टि में मदद कर सकते हैं? साहित्यिकों की परिषद् इधर ध्यान दे सकती है। हम एक नाट्य-समिति का सूत्रधार करें जिसमें रवि ठाकुर, शिशु भादुड़ी उदयशंकर आदि का योग माँगा जाय। धन एकत्र कर एक अभिनय-भवन निर्माण किया जाय और समय-समय पर अभिनय योग्य नाटक आमंत्रित किये जायँ। क्या यह बात कल्पनातीत है? हमें ऐसे रंग-मंच की जरूरत है जो हमारी जन-समाज का प्रतिनिधि बन सके, जिसमें हमारी आशा-अभिलाषाएँ प्रतिबिम्बित हों।



'प्रसाद' की नाट्य-कला

विगत वर्षों में एक-एक कर हिंदी के कई महारथी उठ गये। काव्य में अब भी नवीन शक्तियाँ जागृत हैं, उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में भी काम जारी है। नाटक का क्षेत्र सूना-सा दीखता है।

हिंदी नाटक का भण्डार वैसे भी रीता-सा है। यह आश्चर्य की बात है, क्योंकि इस देश में नाट्य-कला का वरदान देवताओं की ओर से बहुत पहले ही मिला था। ग्रीस के नाटकों की तुलना में सफल नाटक संस्कृत में लिखे गये थे। अब इस जाति की नाट्य-शक्ति क्यों मौन है?

हिंदी में अपना कोई रंगमंच नहीं। पारसी नाटक-मण्डलियों के अभिनेताओं की अयोग्यताओं पर अभी तक हम निर्भर हैं। भारतेन्दु के नाटक रंगमंच के लिए लिखे गये थे। उनमें एक प्रकार की स्फूर्ति और अभिनव जीवन है।

'प्रसाद' जी के नाटक साहित्यिक और काव्य-प्रधान हैं। वाचनालय की शांति में ही उनका रस और जीवन है। रंगमंच के कोलाहल में उनकी सुकुमारता को कौन परख सकेगा? उसके लिए नये रग-मंच की ही नहीं, किन्तु भावुक और सुसंस्कृत द्रष्टाओं की आवश्यकता होगी।

अनेक वर्षों से 'प्रसाद' जी हिंदी के मुख्य नाटककार समझे जाते रहे हैं। उन्होंने दो उपन्यास, अनेक कहानियाँ और काव्य-ग्रथ रचे थे। 'कामायिनी' ने यह सिद्ध कर दिया कि

सर्व-प्रथम तो 'प्रसाद' जी कवि थे, पीछे और कुछ। इस युग के प्रकाशित काव्य-ग्रंथों में शायद 'कामायिनी' का स्थान ही काल सबसे ऊँचा निर्धारित करे।

'प्रसाद' जी के व्यक्तित्व में जो सादगी थी, उसके कारण उनके प्रति मन में श्रद्धा होती है। वह सब साहित्यिक झगड़ों और गुट्टबंदियों से बच कर अनवरत काव्य-कल्पना में लीन थे। जगत् के राग-द्वेष से अलग 'सत्य, शिव और सुंदर' की उपासना में उन्होंने अपना जीवन बिता दिया। इस ढंग के साहित्यिक-साधू जितने इस देश में हों, उतना ही अच्छा।

इतिहास के प्रति 'प्रसाद'जी का प्रबल आकर्षण था। 'कंकाल' में उन्होंने इतिहास का आँचल छोड़ा और भारी ठोकर खाई। उनके अंतर का कवि खँडहरों और प्राचीन भग्नावशेषों के अतीत जीवन की कल्पना कर उत्फुल्ल हो उठता था। उनकी रचनाओं में देश का इतिहास सजीव होकर हमारे नेत्रों के सामने घूम जाता है; जैसे कुछ देर के लिए अजन्ता अथवा बाग़ की गुफ़ाओं के चित्र शताब्दियों की निद्रा से जाग रंगभूमि में आ पहुँचे हों।

'प्रसाद' जी कवि थे। काव्य ही उनके नाटकों का प्रधान गुण था। यदि कविता की परिभाषा 'रसात्मक वाक्य' मान ली जाय, तो 'प्रसाद' जी के नाटक, कहानी आदि रस में डूबे हैं।

काव्यमय भाषा कथा के विकास में बाधा पहुँचाती है। 'कंकाल' में निरंतर 'प्रसाद'जी भाषा के जाल में उलझे। कहानी-लेखक की दृष्टि से आपका मुख्य गुण वातावरण बनाना था। इसमें उनकी भाषा बड़ी सहायक हुई। 'आकाश दीप' की यही सफलता है।

आपके नाटकों में भी भाषा-माधुरी के कारण जीवन तो

तुरत ही आ जाता है, किन्तु चरित्र-चित्रण और कथानक के प्रवाह में कुछ धीमापन है।

'प्रसाद' नाटककार का विकास आसानी से देखा जा सकता है। इतिहास की खोज और चरित्र की सूझ उनकी आरम्भ से ही ऊँची थी। उनके विकास की छाप उनकी भाषा और गीतों पर है। 'राज्यश्री' के गाने कुछ दुर्बल हैं। क्रमशः यह दुर्बलता मिट गई और 'स्कन्दगुप्त' आदि नाटकों में काव्य का काफ़ी आलोक है।

भाषा और भावों का अद्भुत सामञ्जस्य 'कामना' में मिलेगा। बहुधा उनके पात्र गद्य-काव्य ही बोलते हैं। 'कामना' के वातावरण में यह बात खप जाती है।

'कामना' रूपकबद्ध नाटक है। फूलों के द्वीप में तारा की संतान सुख और शांति से बसती है। उसकी उत्पत्ति का हाल 'कामना' में इस प्रकार है :

'जब बिलोड़ित जलराशि स्थिर होने पर यह द्वीप ऊपर आया, उसी समय हम लोग शीतल तारिकाओं की किरणों की डोरी के सहारे नीचे उतारे गये। इस द्वीप में अब तक तारा की ही संतानें बसती हैं।'

समुद्र के पार किसी दूरवर्त्ती देश से आकर 'विलास' ने इस द्वीप की शान्ति नष्ट कर दी। स्वर्ण और मदिरा की सहायता से उसने 'कामना' पर विजय पा ली। द्वीप में अनाचार फैलने लगा।

इसी प्रकार ग्रीस-निवासी सोचते थे कि इतिहास के पहले मनुष्य-जाति का स्वर्ण-युग था। किन्तु Pandora ने पापों की मंजूषा उत्सुकता के कारण खोल कर अशांति फैला दी। इसी प्रकार कहते हैं, उत्सुकता के कारण Eve ने ज्ञान के वृक्ष का फल खा लिया। उसी का फल हम भोग रहे हैं।

'कामना' के कथानक का प्रवाह अविरल है। फूलों के द्वीप में अनेक नये शब्द सुन पड़ते हैं—'ईर्ष्या', 'द्वेष', 'दम्भ', 'पाखण्ड'। 'विवेक' की सहायता से द्वीप-निवासी 'विलास' को निर्वासित करते हैं। क्या फूलों के द्वीप का वह खोया हुआ संतोष उन्हें फिर भी मिल सकता है? काल-चक्र को उल्टा कौन घुमा सकता है? 'प्रसाद' जी दुखान्त नाटक नहीं लिखते; नहीं तो कामना का पटाक्षेप वहाँ हो सकता था, जहाँ 'विलास' 'लालसा' को रानी बनाता है।

'कामना' के गीत भी बहुत मीठे हैं। 'प्रसाद' जी के गीतों का उनके काव्य में विशेष स्थान है। यदि उनके सब नाट्य-गीतों का अलग संग्रह किया जाय तो यह स्पष्ट हो जायगा। इन गीतों में व्यथा, मार्मिकता और कोमलता मिश्रित हैं। 'कामना' का एक गीत तो बहुत ही सुन्दर है :

'सघन बन-बल्लरियों के नीचे
उषा और सन्ध्या-किरनों ने तार बीन के खींचे
हरे हुए वे गान जिन्हें मैंने आँसू से सींचे।
स्फुट हो उठी मूक कविता फिर कितनों ने दृग मींचे?
स्मृति-सागर में पलक-चुलुक से बनता नहीं उलीचे।
मानस-तरी भरी करुना-जल होती ऊपर-नीचे।'

'एक घूँट' में भी कुछ सुन्दर गीत हैं। यथा—

'जीवन-वन' में उजियाली है।
वह किरनों की कोमल धारा
बहती ले अनुराग तुम्हारा।

फिर भी प्यासा हृदय हमारा
व्यथा घूमती मतवाली है।
हरित दलों के अन्तराल से
बचता-सा इस सघन-जाल से
यह समीर किस कुसुम-बाल से
माँग रहा मधु की प्याली है।'

'प्रसाद' जी को हम ऐतिहासिक नाटककार के रूप में देखने के अभ्यस्त हो गये हैं। उनके नाटक बड़ी खोज के बाद लिखे जाते थे। अनेक स्थलों पर हमारे इतिहास का उन्होंने संशोधन भी किया। प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता राखाल बाबू भी इस बात को मानते थे। आपकी भूमिकाओं पर विद्वत्ता और खोज की मुहर है।

'कामना', 'एक घूँट' और 'विशाख' ऐतिहासिक नाटक नहीं हैं, परन्तु इनके वातावरण में प्राचीनता है। जिस समाज के चित्र 'मेघदूत' अथवा 'मालती-माधव' में मिलते हैं, उसी का चित्रण इन नाटकों में है। वह हमारा स्वर्ण-युग था। केवल कला में उसका जीवन सुरक्षित है।

'जनमेजय के नाग-यज्ञ' में आर्य और नाग जातियों का संघर्ष चित्रित है। प्राचीन गुरुकुलों के यहाँ उज्ज्वल चित्र हैं। ऐसे ही वर्णन उपनिषद् आदि ग्रन्थों में मिलते हैं। भावों की प्रौढ़ता और कुशल चरित्र-चित्रण 'नाग-यज्ञ' की विशेषता है।

'अजातशत्रु' में भाषा और भी निखर गई है। 'अजातशत्रु' बुद्ध के जीवन-काल का चित्र है। उस ससय उत्तर भारत के प्रमुख राज्य मगध, कोशल, कोशाम्बी आदि थे। 'स्वप्न-वासवदत्ता' में इन्हीं राज्यों का वर्णन है।

अजातशत्रु ने बिम्बसार का वध किया, इस मत से 'प्रसाद' जी सहमत नहीं। फिर भी बिम्बसार के गाम्भीर्य और अजातशत्रु के लोभ में एक प्रकार का आन्तरिक संघर्ष है। राजकुमार विरुद्धक के वक्तव्य सुन्दर हैं, किन्तु लम्बे हैं। 'अजातशत्रु' का चरित्र-चित्रण उच्च-कोटि का है। उत्तम नाटक के यहाँ सभी गुण हैं।

'चन्द्रगुप्त' 'प्रसाद' जी का सबसे लम्बा नाटक है। आपने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि मौर्यवंश के राजा मुरा-जात शूद्र नहीं, पिप्पली-कानन के क्षत्रिय थे। भारत के इतिहास में यह युग चिर-स्मरणीय है। कौटिल्य ने इसी समय 'अर्थ-शास्त्र' लिखा था और चन्द्रगुप्त ने Seleukos को पराजित कर भारत का मुख उज्ज्वल किया था।

'मुद्राराक्षस' में कौटिलीय कुटिलता है, वह 'प्रसाद'जी के नाटक में नहीं। यहाँ अधिक आदर्शवाद और भावुकता है। कथानक की जटिलता में 'मुद्राराक्षस' अद्वितीय है। मेगस्थनीज़ के आधार पर 'चन्द्रगुप्त' का आदर्शवाद उचित दीखता है; किन्तु चाणक्य के चरित्र में भी 'प्रसाद' जी ने कुछ उज्ज्वलता दी है! 'मुद्राराक्षस' का स्थान इतिहास में सुदृढ़ है। उसके विरोध में 'प्रसाद' जी ने अपना स्वतंत्र मत बनाकर साहस दिखाया है।

'चन्द्रगुप्त' में 'प्रसाद' जी की देश-पूजा स्पष्ट झलकती है। भारत के प्रति आपका गान इतना सुन्दर है कि राष्ट्र-सभा के अधिवेशनों में गाना चाहिये।

'अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

× × ×

लघु सुरधनु से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये, समझ नीड़ निज प्यारा।'

'ध्रुवस्वामिनी' गुप्त-काल के एक रहस्य पर प्रकाश डालता है। समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय के बीच एक अन्य सम्राट रामगुप्त के भी कुछ सिक्के मिले हैं। उन्हीं रामगुप्त की कथा यहाँ वर्णित है। 'ध्रुवस्वामिनी' की भाषा में ओज और सौंदर्य्य है। चरित्र चित्रण में प्रौढ़ता है। स्त्री-पात्र विशेष सफल हैं। गुप्तकाल की श्री और अवनति का यहाँ परिचय मिलता है।

'स्कन्दगुप्त' का विषय वही है, जो राखाल बाबू कृत करुणा का। स्कन्दगुप्त भारत का भाल ऊँचा करनेवाले वीरों में थे। हूणों से युद्ध करते समय यह भारत के सम्राट भूमि पर सोये थे। उनके साथ ही गुप्त-कुल की विजय-लक्ष्मी भी लुप्त हो गई। 'प्रसाद' जी के अनुसार दन्त कथाओं के विक्रम स्कन्द ही थे। इन्हीं की राजसभा के कवि कालिदास थे।

नाट्य-कला की कसौटियों पर कसने से 'स्कन्दगुप्त' का स्थान बहुत ऊँचा है। विजया और देवसेना का चरित्र-चित्रण सुन्दर है। स्कन्द, चक्रपालित, बुद्धवर्मा गुप्तकाल की विभूतियाँ हैं। बौद्ध भिक्षु हूणों के साथ मिलकर षड्यन्त्र रच रहे थे। गुप्त-साम्राज्य का वह मध्याह्न-काल था। सूर्य अस्ताचल की ओर झुक चले थे। पुरगुप्त के अशक्त हाथों में राजदण्ड थामने का बल न था। नाटक में इसका सजीव चित्र है।

'स्कन्दगुप्त' की भाषा प्रौढ़, चरित्र-चित्रण कुशल और कल्पना सुकुमार है।

'प्रसाद' ने हिंदी में एक नये ढंग के नाटक की सृष्टि की। 'चंद्रावली' काव्य-प्रधान नाटक था, किन्तु उसमें नाटक की

अपेक्षा काव्य ही अधिक था। 'प्रसाद' के नाटक सर्वप्रथम साहित्य की विभूति हैं; किंतु उचित परिस्थितियों में अभिनय के योग्य भी हैं।

अनेक उच्च कोटि के पात्रों से उन्होंने हिन्दी नाटक का भंडार भरा है। आपके पात्र अधिकतर सुकुमार, भावुक और आदर्शवादी होते हैं। स्वयं 'प्रसाद' ऐसे थे; फिर उनके पात्र कहाँ से भिन्न होते? स्त्री-पात्रों में नारीसुलभ कोमलता लाने में 'प्रसाद' विशेष सफल हुए। मध्यम कोटि के चरित्र 'प्रसाद'जी से हमको नहीं मिले, न मानव-स्वभाव की जटिलता।

'प्रसाद' को हिंदी का Scott कहा जा सकता है। हमारे प्राचीन इतिहास के भग्नावशेषों की आपने रक्षा की है और इतिहास के कङ्काल में जीवन-संचार किया है।

भाषा के प्रति 'प्रसाद'जी का मोह कुछ अधिक था। मधुर भाषा में लीन हो वह और सब भूल जाते थे। चरित्र-चित्रण और कथानक का भी महत्त्व आँखों की ओट हो जाता था।

'प्रसाद' के नाटकों में व्यथा का भार रहता है। इसके लिए आप विशेष चरित्र गढ़ते हैं। आपके गीत व्यथा से ओत-प्रोत होते हैं। किंतु भारतीय परम्परा के अनुसार आप दुःखांत नाटक नहीं लिखते। नाट्य-शाला से दर्शक हल्के हृदय लौटें, यह हमारे नाटककारों का सदैव लक्ष्य रहा है।

'प्रसाद' कवि हैं, दार्शनिक नहीं। आपके नाटकों से हमें कोई विशेष संदेश नहीं मिलता। जीवन के अनेक दृश्य—पीड़ा के, सुख के, आह्लाद के—आपने डूबे हैं। रंगीन कल्पना में डूबोकर आप उन्हें चित्र-पट पर खींच देते हैं। किन्तु इस उदासीन कलाकार की अंतरात्मा भी मनुष्य की वेदना के प्रति अधिक आकर्षित होती है।

जीवन के इस चित्र-विचित्रित स्वप्न को देख आज कलाकार की आँखें बंद हैं। क्या किसी मधुमय जगत् में देव उसे जीवन की पीड़ा का रहस्य समझाने में सफल हुए हैं ?



एकांकी नाटक

एकांकी नाटक का लम्बे नाटक से लगभग वही सम्बन्ध है, जो कहानी का उपन्यास से। इनमें केवल लम्बाई का ही अन्तर नहीं है। दोनों विभिन्न जातियों की रचनाएँ हैं। एक में जीवन के किसी विशेष अंग की झलक रहती है, चरित्र का कोई एक पहलू, कोई घटना-संकेत दूसरे में जीवन की जटिलता, चरित्र की गुत्थियाँ, घटना-चक्र का नर्त्तन। एकांकी नाटक की कला अलग अपनी है। थोड़े से समय में दर्शक को जीवन की विषम समस्याओं का कुछ अनुमान करा दे, यह एकांकी नाटक का लक्ष्य है।

एकांकी नाटक की आयु अधिक नहीं हुई। वैसे तो छोटे-छोटे दृश्य पुरातन से रंगमंच पर दिखाये गये हैं। अंग्रेजी के पुराने नाटक Everyman अथवा The four Pr. एक प्रकार के एकांकी नाटक ही हैं। कठपुतलियों के तमाशे जिनसे रंगमंच के विकास का घना सम्बन्ध है, एकांकी नाटक के-से ढँग पर ही ढले थे। किन्तु महासमर से कुछ वर्ष पूर्व—जब अंग्रेजी रंगमंच लगभग एक शताब्दी की गहरी निद्रा से आँख मलकर उठ रहा था—एक नये ढंग के छोटे नाटक का जन्म हुआ और शीघ्र ही वह लोकप्रिय भी हो गया। अमेरीका में एकांकी नाटक का विशेष स्वागत हुआ, क्योंकि स्वभाव से ही अमेरीकानिवासी षट्रस व्यञ्जन पसन्द करते हैं! एक लम्बे गंभीर नाटक की अपेक्षा दो विभिन्न ढंग के छोटे नाटक देखना उन्होंने अधिक अच्छा समझा!

कहते हैं कि यह युग बड़ा तीव्रगामी है। इसे पल मारने का भी अवकाश नहीं। लन्दन अथवा बम्बई ऐसे नगर में ग्रामीण सोचता है कि कहीं आग बुझाने सब कोई भागे जा रहे हैं। रेल, तार और वायुयान के इस गतिशील युग में कौन वह अन्त न होनेवाले ग्रन्थ पढ़े—जिनमें जीवन की अचल घड़ियाँ ही सुरक्षित हैं? अथवा कौन रात में थका-माँदा घंटों में कठिन 'सीट' पर बैठ अपनी नींद ख़राब करे? इस युग की तन्मयता भी महासमर ने नष्ट कर दी। उन चार वर्षों में गम्भीर नाटक को रंगमंच से हल्के, संगीत-प्रधान प्रहसन ने निकाल बाहर किया। दर्शक अपने को भूलने के लिए ही रंग-भूमि में पहुँचते थे। एकाग्र साहित्य-साधना की किसी को इच्छा न रही।

ऐसे ही अनेक कारणों से एकांकी नाटक का पश्चिम के साहित्य में उत्थान हुआ। रंगमंच का स्वामी केवल अपना लाभ देखता है। कला की परख उसके पास नहीं। इन वणिकों और पेशेवाले अभिनेताओं से रंगमंच का उद्धार करने को इंगलैण्ड में अनेक स्वतन्त्र नाटक मंडलियाँ बनीं। विद्यालयों और मनोरंजन के लिए अभिनय करनेवाले समाज में एकांकी नाटक का खूब स्वागत हुआ।

पश्चिम के नाटक-साहित्य में जो अब नया जीवन संचार है, उसका एक चिन्ह एकांकी नाटक की सफलता भी है। जन-साधारण में जो नाट्य-कला के प्रति उत्साह है, उसे एकांकी नाटक से बेहद सहायता मिली है।

अंग्रेज़ी में एकांकी नाटक पुस्तक-बद्ध हो गये हैं। पठन-पाठन के लिए अनेक मालाएँ उपलब्ध हैं। शॉ (Shaw), गॉल्ज़वर्दी (Galsworthy), येट्स (Yeats) आदि महारथियों ने भी अनेक एकांकी नाटक लिखे हैं। शॉ का सर्व-प्रसिद्ध संक्षिप्त नाटक

The man of Destiny नैपोलियन का रेखा-चित्र है। The Dark Lady of the Sonnets शेक्सपियर के जीवन की एक किंवदन्ती का मनोरंजक और कुछ व्यंग लिए वर्णन है। शायद सभी एकांकी नाटकों में अग्रगण्य और प्रभावशाली Synge का Riders to the sea है। इस छोटे-से दुःखान्त नाटक में बड़ी व्यथा भरी है और इसकी सीधी-सादी भाषा में काव्य की आत्मा छिपी है।

पश्चिम में एकांकी नाटक के 'लघु जीवन' का इतिहास अभी से गर्वपूर्ण है। पाश्चात्य जीवन की अनेक अनुभूतियाँ यहाँ सुरक्षित हैं—उनके मधुर स्वप्न, मदिर विलास, आशा, अभिलाषाएँ, उनका हास्य, जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण। साहित्य के जीवन का यही प्रमाण है।

हिन्दी का कोई स्वतन्त्र रंगमंच नहीं। हमारे रंगमंच पर पारसी कम्पनियों का अधिकार है। 'भारतेन्दु' और 'व्याकुल' नाटक-मंडलियों ने हमारे रंगमंच को साहित्यिक बनाने में भगीरथ प्रयत्न किया, किन्तु लोकमत प्रगतिशील न होने के कारण यह प्रयास विफल रहा। हिन्दी के नाटक केवल पढ़े जाते हैं। वाचनालय की शान्ति से बाहर उनका जीवन नहीं। इसका प्रबल अपवाद 'एक भारतीय आत्मा' का 'कृष्णार्जुन युद्ध' था।

'भारतेन्दु' हमारे पहले नाटककार थे। उनके नाटक भी अभिनय के लिए लिखे गये थे। यद्यपि 'चन्द्रावली' को नाटक की अपेक्षा काव्य कहना अधिक उपयुक्त होगा। भारतेन्दु के नाटकों में एक प्रकार की हलचल और उद्दाम यौवन है। आपका असम्पूर्ण नाटक 'प्रेमयोगिनी' संक्षिप्त नाटक समझा जा सकता है, यदि हम उसे केवल जीवन का एक टुकड़ा समझें। पं० बद्रीनाथ भट्ट बड़े मनोरजक प्रहसन लिखते थे। 'चुङ्गी की

उम्मेदवारी' पढ़कर अब भी हम हँस सकते हैं। 'प्रसाद' जी ने साहित्यिक नाटक को हिन्दी में बहुत ऊँचे आसन पर बैठाया। आपका 'एक घूँट' सफल एकांकी नाटक है। यहाँ जीवन की विनोद और काव्य-पूर्ण झाँकी हमें मिलती है। और उत्कृष्ट कोटि के हल्के रेखा-चित्र।

पिछले वर्षों में पं० गोविन्दवल्लभ पंत और सुदर्शनजी ने मासिक-पत्रों में अनेक एकांकी नाटक लिखे। अनिच्छापूर्वक हमें स्वीकार करना पड़ता है कि ये नाटक एक लीक में ही फँस रहे। उगते हुए साहित्य के यहाँ कोई लक्षण न दीखे। नाटक अच्छे थे, किन्तु भविष्य की ओर इंगित न करते थे।

आज हमारे जीवन में एक नवीन जाग्रति और हलचल है। प्रगतिशील साहित्य की हमारे बीच में माँग है। क्या हमारे साहित्यकार नवयुग की ओर अपने पैर बढ़ायेंगे?

अंग्रेजी के प्रभाव से हिन्दी-साहित्य में एकांकी नाटक की एक नई धारा फूट रही है। हिन्दी के भावी रंगमंच पर इसका भारी प्रभाव हो सकता है। हमारे विश्वविद्यालयों में जो अभि-नय-योग्य नाटकों की खोज मचती है, वह दूर हो सकती है। साथ ही हमारा साहित्यिक नाटक भी पुनः रंगमंच के जीवन से मिल सकता है।

श्री भुवनेश्वरप्रसाद के एकांकी नाटकों का संग्रह 'कारवाँ' हिन्दी-साहित्य में एक नई शक्ति का चिह्न है। जितनी विद्रोह की भावना और आग इन रचनाओं में है, वह हिन्दी में बच्चन के अतिरिक्त किसी के पास नहीं। शायद भगवतीचरण वर्मा के पास भी नहीं। 'कारवाँ' की कृतियों पर पाश्चात्य 'टेकनीक' और विचार-धारा की गहरी छाप है। किन्तु दल-दल में फँसे साहित्य का उद्धार ऐसी विप्लवकारी शक्तियों से ही होता है। रूढ़िग्रस्त

हमारे समाज के प्रति इन नाटकों में घोर असंतोष है। अवसाद और उद्विग्नता की जो अन्तर्ध्वनि यहाँ सुन पड़ती है, वह नष्ट होते हुए समाज में स्वाभाविक है।

'कारवाँ' के Stage directions लम्बे और व्यापक हैं। उनकी भाषा एक नया आश्चर्य और विस्मय लिये है; उसकी विशेषता काव्य, शक्ति, अदम्य प्रवाह हैं। आपके शब्द-चित्र हमें विवश आकर्षित करते हैं—'कानपुर के पार्श्वभाग में लज्जा से मुँह छिपाये कुलियों के निवास-स्थान'; 'उसी ज्वलन्त नगर के प्रेत के समान एक भाग में एक कोठरी।' आपकी उपमाएँ—'मलिन वस्त्रों में बाईस वर्ष की युवती—जैसे आँसुओं की नीहारिका में नेत्र'; 'आपत्ति के समान एक २६-२७ वर्ष के युवक का प्रवेश'; 'घर का नौकर—जो भाग्य के समान काँप रहा है।' इतना नग्न यथार्थवाद अहमदअली की कहानियों में हमने अवश्य देखा है, किन्तु भाषा में वहाँ ऐसी लचक, व्यापकता, मौलिकता नहीं; शायद उनके उर्दू गद्य में हो।

शॉ Shaw का 'कारवाँ' के लेखक पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। आपने माना भी है कि आपका 'शैतान' शॉ का ऋणी है। 'श्यामा' पर 'Candida' की छाया लम्बी होकर पड़ी है। आप विवाह की विडम्बना में काफी उलझे हैं। आपके नाटकों में अधिकतर दो तरह के पात्र मिलेंगे—एक तो समाज के आगे आदर्शवादी बने, भीतर से खोखले, कपटी व्यक्ति, दूसरे समाज के सामने पतित, विद्रोही; किन्तु भारी बलिदान की क्षमता रखनेवाले वीर। आपके नाटक पढ़कर अनायास ही Ibsen के 'Doll's House' अथवा 'Pillars of Society' और शॉ के 'The Devil's Disciple', Candida' आदि का स्मरण हो आता है। किन्तु आपके दृश्य सचमुच ही भारतीय जीवन की कठिन

और व्यथित आलोचना हैं। इन नाटकों में जीवन की-सी अस-म्पूर्णता भी है। हमें खेद है कि इन नाटकों की हिन्दी-जगत में अभी तक समुचित चर्चा नहीं हुई। चलती हुई भाषा में व्यक्त हमारे समाज-व्यवधान के प्रति यह कड़वी चुनौती भी विफल रही।

श्रीयुत पृथ्वीनाथ शर्मा का एकांकी नाटक 'दुबिधा' भी पाश्चात्य 'टेकनीक' के अनुगत, किन्तु स्वयं उसमें अपना उमड़ता हुआ जीवन नहीं। जैसा 'कारवाँ' में अवश्य है!

श्रीयुत सज्जाद ज़हीर ने भी 'हंस' में एकाध एकांकी नाटक लिखे हैं। आपकी भाषा सजीव हिन्दुस्तानी और आपके विचार प्रगतिशील हैं। अहमद अली की अपेक्षा आप राजनीति की ओर बहुत झुक गये हैं, किन्तु साहित्यकार के आप में भी स्वाभाविक गुण हैं। समाज की बँधी व्यवस्था को आप कठोर आलोचना-त्मक दृष्टि से देखते हैं और आपकी रचनाएँ नई दिशाओं की ओर इंगित करती हैं।

हाल में श्रीयुत रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों का संग्रह 'पृथ्वीराज की आँखें' नाम से प्रकाशित हुआ है। जितना रहस्य-मय शीर्षक है, उतनी असल रचना नहीं। नाटक अच्छे हैं। और ऊँची काव्य-कल्पना के गुण उनमें हमें निरन्तर मिले हैं। 'बादल की मृत्यु' तो नाटक के रूप में कविता ही है। 'चम्पक' हमको बहुत अच्छा लगा। 'नहीं का रहस्य' उससे कुछ उतर कर। उच्च मनुष्य-स्वभाव के यहाँ विशद चित्र हैं। 'पृथ्वीराज की आँखें' और 'एक्ट्रेस' से निराशा-सी हुई।

वर्माजी को 'पथ-प्रदर्शक' के रूप में हम नहीं देख सके, यद्यपि दुलारेलालजी उनको इसी रूप में देख रहे हैं। एकांकी नाटक को अथवा हिन्दी-साहित्य को यहाँ कोई नया पथ नहीं सुझाया गया। सरस भाषा और भावुकता जो इन नाटकों के

प्रधान गुण हैं, वर्माजी की निजी संपत्ति हैं। 'टेकनीक' आदि में कुछ वर्माजी ने नया अन्वेषण नहीं किया।

हमें विश्वास होता है कि हिन्दी रंगमंच और एकांकी नाटक का भविष्य उज्ज्वल है। उच्च-कोटि के मौलिक नाटक और अनुवाद हमारे सामने हैं। गुजराती के नवयुवक कवि श्री कृष्णलाल श्रीधराणी का एकांकी नाटक 'बरगद' तो हमें बहुत ही प्रिय और मीठा लगा। अन्य भाषाओं में भी काम हो ही रहा है। हिंदी की सृजन-शक्ति भी जाग्रत है। केवल एकांकी नाटक की ओर अभी वह उन्मुख नहीं हुई।

पन्तजी एक सुन्दर नाटक 'ज्योत्स्ना' लिख ही चुके हैं। क्या हम आशा करें कि कहानी की भाँति हमारे एकांकी नाटक में भी वह कुछ नई बात ला देंगे? श्री भगवतीचरण वर्मा की कहानियों पर नाट्य-पद्धति की काफी छाप है; चित्रपट के व्यक्तिगत अनुभव से भी आप इधर आकर्षित हुए होंगे। नरेन्द्र शर्मा के अप्रकाशित काव्यपूर्ण नाटक 'सन्ध्याभिसार' की एक बार मैंने पांडुलिपि देखी थी। वह भी श्रेष्ठ नाटक रचना कर सकते हैं। 'अज्ञेय'जी की प्रतिभा सर्वतोमुखी है ही। अहमद अली का एकांकी नाटक The Land of Twilight मैं अंग्रेज़ी में पढ़ चुका हूँ। इन शक्तियों को नाट्य-रचना में लगा दे, हमको कोई ऐसी परी की छड़ी चाहिये!

शायद स्वतः ही ये शक्तियाँ रंगमंच की परिधि में खिंच आवें। यदि लोकमत और साहित्यिक रुचि में बल है, तो नाटक का भंडार भी पूरा हो जायगा। विश्वविद्यालयों में और बाहर भी तरुण-युग रंगमंच की ओर मुड़ रहा है। यदि हममें स्वयं प्राण हैं, तो हमारे साहित्य का कोई अंग कैसे और कब तक निष्प्राण रह सकता है?



प्रेमचन्द : कहानीकार

कहानी का जन्म पूर्व में हुआ। आजकल भी सिन्दबाद और अलादीन अथवा हितोपदेश की कहानियों से हमारा मनोरंजन होता है। परन्तु आधुनिक साहित्यिक-गल्प कई शताब्दियों तक पश्चिम की यात्रा कर अब पूर्व को लौटी है। सेंट्सबेरी के कथनानुसार कहानी के चार अंश होते हैं। कथानक (Plot), चरित्र-चित्रण (Character), वार्ता (Dialogue) और वर्णन अथवा वातावरण (Description)। पश्चिम के, विशेषकर इङ्गलैण्ड के, कहानीकारों का कथानक फूहड़ होता है। चरित्र-चित्रण ही उनका सफल होता है। टैगोर अथवा शरत्चन्द्र के उपन्यासों में जो रस मिलता है, वह कभी पश्चिम के बड़े कलाकारों में भी नहीं।

यह स्वाभाविक सी बात मालूम होती है कि पूर्व में फिर उत्कृष्ट कहानी-लेखकों का जन्म हो, क्योंकि इस कला में हमारे पूर्वज सदा से निपुण रहे हैं। केवल कहानी का रूप कुछ बदल गया है।

प्रेमचन्द ने 'मानसरोवर' के 'प्राक्कथन' में लिखा है—'सबसे उत्तम कहानी वह होती है, जिसका आधार किसी मनोवैज्ञानिक सत्य पर हो।' 'प्रेम-द्वादशी' की भूमिका में आपने लिखा है—'वर्तमान आख्यायिका का मुख्य उद्देश्य साहित्यिक रसास्वादन कराना है, और जो कहानी इस उद्देश्य से जितनी दूर जा गिरती है, उतनी ही दूषित समझी जाती है।' प्रेमचन्द का

विशेष महत्व यह है कि अपने उपन्यास और कहानियों में उन्होंने भारत की आत्मा को सुरक्षित रखा है।

उनकी रचनाओं का स्मरण करते ही भारत के ग्राम, यहाँ का कृषक-वर्ग, उच्च-कुल की ललनाएँ, आम और करौंदे के पेड़, यहाँ के पशु-पक्षी स्मृति-पट पर घूम जाते हैं। आपकी रचनाएँ पढ़कर देश के मनुष्य और पुराने आदर्श हमारी दृष्टि में ऊपर उठ जाते हैं।

प्रेमचन्द और सुदर्शन दोनो ही पहले उर्दू में लिखते थे। 'सप्त-सरोज' और 'सेवासदन' का उपहार देकर प्रेमचन्द ने हिन्दी-साहित्य में प्रवेश किया। इन रचनाओं में जो रस, अनुभूति और प्रतिभा है, उसके आगे प्रेमचन्द कभी न बढ़ सके।

उपन्यास और गल्प भिन्न कला हैं। यह आवश्यक नहीं है कि सफल उपन्यासकार अच्छा गल्प-लेखक भी हो। उपन्यास में जीवन का दिग्दर्शन होता है, गल्प में केवल झाँकी मात्र होती है। मानव-चरित्र के किसी एक पहलू पर प्रकाश डालने को, किसी घटना या वातावरण की सृष्टि के लिए कहानी लिखी जाती है। जीवन के सभी अंगों पर या मानव-चरित्र की सभी जटिलताओं पर कहानी प्रकाश नहीं डाल सकती। प्रेमचन्द लिखते हैं—'कहानी में बहुत विस्तृत विश्लेषण की गुञ्जायश नहीं होती। यहाँ हमारा उद्देश्य सम्पूर्ण मनुष्य को चित्रित करना नहीं वरन् उसके चरित्र का एक अंग दिखाना है।'

प्रेमचन्द सफल उपन्यासकार और गल्प-लेखक थे। इस लेख में हम उनकी कहानी-कला पर कुछ विचार करेंगे।

(२)

'सप्त-सरोज' प्रेमचन्द का पहला कहानी-संग्रह है। इसके विषय में शरच्चन्द्र ने यह सम्मति दी थी—'गल्पें सचमुच बहुत उत्तम और भावपूर्ण हैं। रवीन्द्रबाबू के साथ इनकी तुलना

करना अन्याय और अनुचित साहस है। पर और कोई भी बँगला लेखक इतनी अच्छी गल्पें लिख सकता है या नहीं इसमें सन्देह है।'

रवि बाबू की भाषा में जो माधुरी और रस है, उनकी रचना में जो अनुभूति और पीड़ा है, उसकी समता प्रेमचन्द नहीं कर पाते। रवि बाबू विश्व-साहित्य के महारथी हैं। यदि उनकी तुलना में प्रेमचन्द बराबर नहीं उतरते, तो हिन्दी के लिए कोई अपमान की बात नहीं।

परन्तु प्रेमचन्द की रचना में अपने अनेक गुण हैं, जो और कहीं नहीं मिलते। ग्रामीण कृषकों का हृदय कौन इतनी अच्छी तरह जानता है? गाँधी के अतिरिक्त और किसने इतनी तपस्या से ग्राम्य-जग को पहचाना है? 'पंच-परमेश्वर' के अतिरिक्त हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति के ऐक्य का ऐसा चित्रण और कहाँ मिलेगा?

ग्राम्य-जग का चित्र खींचते हुए आप कहते हैं—'वहाँ आम के वृक्षों के नीचे किसानों की गाढ़ी कमाई के सुनहरे ढेर लगे हुए थे। चारों ओर भूसे की आँधी-सी उड़ रही थी। बैल अनाज दाँते थे; और जब चाहते भूसे में मुँह डालकर अनाज का एक गाल खा लेते थे। गाँव के बढ़ई और चमार, धोबी और कुम्हार अपना वार्षिक कर उगाहने के लिए जमा थे। एक ओर नट ढोल बजा-बजाकर अपने करतब दिखा रहा था। कवीश्वर महाराज की अतुल काव्य-शक्ति आज उमङ्ग पर थी।'

—'उपदेश', 'सप्त-सरोज।'

इस संग्रह में दो कहानियाँ तो बड़ी ही उच्च-कोटि की हैं:— 'बड़े घर की बेटी' और 'पंच-परमेश्वर'। किसी भी साहित्य को ऐसी रचनाओं पर गर्व हो सकता है।

'बड़े घर की बेटी' छोटे से गाँव में आई, जहाँ न वह रेशमी स्लीपर पहन सकती थी, जहाँ नाम के लिए कोई सवारी भी न थी। न ज़मीन पर फ़र्श, न दीवारों पर चित्र। फिर भी उसने यहाँ की गृहस्थी सम्हाल ली। एक बार खाना बनाते समय देवर से कहा-सुनी हो गई और उसने आनन्दी को खड़ाऊँ खींच मारा। वह बहुत रोई। उसके पति भी झल्लाये। घर से अलग होने की नौबत आ गई। अब उसका देवर भी पछता रहा था और आँसू बहा रहा था। आनन्दी पिघली। उसने बीच-बचाव कर शान्ति करवा दी।

मानव स्वभाव का बड़ा मार्मिक और सुन्दर चित्र है। प्रेमचन्द की रचनाओं को पढ़कर मनुष्य पर हमारी श्रद्धा बढ़ जाती है। वास्तविकता और आदर्शवाद का सुन्दर सम्मिश्रण रहता है। हम यह कभी नहीं सोचते कि यह चरित्र कल्पना-जग के हैं। उनके वर्णन में वास्तविकता होती है; कहानी का बाह्य रूप जीते-जागते संसार-सा; आत्मा आदर्शपूर्ण।

जो कथा-शैली प्रेमचन्द ने यहाँ अपनाई उसको अन्त तक निभाया। 'बड़े घर की बेटी' एक हद तक कठोर होती चली जाती है, फिर अत्यन्त नम्र हो जाती है। जैसे लोहे की पत्ती जितने ज़ोर से खींची जायगी, उतनी ही वह उचटेगी। या धनुष की प्रत्यञ्चा जितनी ही खींची जायगी उतनी ही दूर वह बाण को फेंकेगी। उनकी इस शैली को गणित की रेखाओं से समझ सकते हैं। एक हद तक कथा का चढ़ाव होता है; फिर वह पीछे हट जाती है।

इसी प्रकार 'पंच-परमेश्वर' भी एक हद तक गिरते हैं, फिर सँभल जाते हैं। अभी पिछले पाँच-छः वर्षों में लिखी हुई कहानियों के संग्रह 'मानसरोवर' में भी इसी शैली की अनेक गल्पें मिलती हैं।

प्रेमचन्द में सच्चे साहित्यकार की सब अनुभूतियाँ थीं। मनुष्य-स्वभाव पर उन्हें श्रद्धा थी। कसौटी पर चढ़कर मनुष्य सच्चा ही उतरता है। उदाहरणार्थ, कुछ बाद की लिखी कहानी 'ईश्वरी न्याय।'

उनकी भाषा ग्रामीण-जीवन-सी ही सीधी-सादी है। उनकी उपमाएँ दैनिक जीवन से ली गई हैं। 'जिस तरह सूखी लकड़ी जल्दी से जल उठती है, उसी तरह क्षुधा से बावला मनुष्य ज़रा-ज़रा-सी बात पर तिनक उठता है।' (बड़े घर की बेटी) 'अब इस घर से गोदावरी का स्नेह उस पुरानी रस्सी की तरह था जो बार-बार गाँठ देने पर भी कहीं-न-कहीं से टूट ही जाती है।' (सौत)

भाषा मुहावरेदार काफी है। 'पहले घर में दिया जलाते हैं, फिर मस्जिद में।' कहीं-कहीं पर बड़ा कोमल व्यंग है। 'इञ्जिनियरों का ठेकेदारों से कुछ वैसा ही सम्बन्ध है जैसा मधुमक्खियों का फूलों से। यह मधुरस कमीशन कहलाता है। कमीशन और रिश्वत में बड़ा अन्तर है। रिश्वत लोक और परलोक दोनों ही का सर्वनाश कर देती है। उसमें भय है, चोरी है, बदनामी है। मगर कमीशन एक मनोहर वाटिका है, जहाँ न मनुष्य का डर है, न परमात्मा का भय...।' (सज्जनता का दण्ड)

'सप्त-सरोज' में प्रेमचन्द की कहानी-कला का जो रूप बना, वह अन्त तक बना रहा। इधर कुछ उनमें परिवर्त्तन होने लगा था, किन्तु अनेक वर्षों तक उनकी कथा के पात्र ऐसे ही वातावरण में ऐसे ही स्वरूप से भ्रमण करते रहे।

(३)

'नव-निधि' में बहुत करके ऐतिहासिक कहानियाँ हैं। कहानियाँ सभी मनोरंजक हैं। किन्तु प्रेमचन्द की गल्प-कला इन

कहानियों में उतनी उच्च-कोटि की नहीं। कथानक के उतार-चढ़ाव में और चरित्र-चित्रण में लेखक की कल्पना को उतनी स्वतंत्रता नहीं। प्रेमचन्द की कहानी-कला का एक विशेष गुण कथानक-गुंफन है। क़सीदे के समान घटना का जाल उसकी कल्पना बनाती है। किन्तु यहाँ कल्पना बँध-सी गई है।

ऐतिहासिक कहानी की नस्ल ख़च्चर के समान है। न वह इतिहास ही, न सफल कहानी ही। Leslie Stephen ने उसे Hybrid (मिश्रित रक्त की) बताया है। ऐतिहासिक कहानी तब सफल होती है, जब ऐतिहासिक वातावरण में कल्पना के चरित्र विचरें। ऐतिहासिक चरित्रों को लेकर कहानीकार अपनी सब स्वतन्त्रता खो देता है। 'नव-निधि' में धोखा नाम की कहानी सुन्दर है। शायद इसके पात्र और इसका कथानक कल्पित हैं।

'नव-निधि' की पिछली तीन गल्पें 'अमावस्या की रात्रि', 'ममता' और 'पछतावा' प्रतिभापूर्ण हैं। इनमें प्रेमचन्द की स्वाभाविक कहानी-कला का चमत्कार है। जो शैली उन्होंने 'सप्त-सरोज' में अपनाई थी, उसी को सफलतापूर्वक निबाहा है। इनमें मनुष्य के हृदय की, उसके भावों की अच्छी सूझ है।

ऐतिहासिक कहानियाँ अधिकतर मुग़ल साम्राज्य के मध्याह्न-काल की हैं। पहली दो कहानियाँ 'राजा हरदौल' और 'रानी सारन्धा' बुन्देलों की वीरता और आन से ओत-प्रोत हैं। इन कहानियों को पढ़कर मन में राजपूताने की वीर-कथाएँ हरी हो जाती हैं।

'प्रेम-पूर्णिमा' में प्रेमचन्द की कहानी-कला में कुछ विकास न हुआ। अधिकतर कहानी सुगठित हैं और 'सप्त सरोज' के पथ पर चली हैं। 'ईश्वरी न्याय', 'शंखनाद', 'दुर्गा का मन्दिर'

,बेटी का धन', आदि कहानी 'पंच-परमेश्वर' और 'बड़े घर की बेटी' जैसी उत्कृष्ट कहानियों से टक्कर लेती हैं। 'शंखनाद' और 'दुर्गा का मन्दिर' तो प्रेमचन्दजी ने अपने 'प्रेम-द्वादशी' नामक बारह सर्वोत्तम कहानियों के संग्रह में भी रखा है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर 'सप्त-सरोज' और 'प्रेम-पूर्णिमा' के बीच उनकी कला का कुछ ह्रास ही हुआ। अधिकतर कहानियाँ पुरानी लिखी हुई जान पड़ीं। अथवा यह हो सकता है कि उनकी कला एक परिपाटी का शिकार होकर उन्नति नहीं कर सकी। जीवित कला सदा प्रगतिशील होती है।

प्रेमचन्द का विशेष गुण उनका मनोविज्ञान है। हृदय के सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव समझने में वे निपुण हैं। 'ईश्वरीय न्याय', 'दुर्गा का मन्दिर', 'बेटी का धन' आदि गल्पें इसी सूझ के कारण सफल हैं।

जहाँ ग्राम्य-जग की ओर प्रेमचन्द ने मुख मोड़ा है, वहाँ उन्होंने आशातीत सफलता पाई है। 'शंखनाद' नाम की कहानी में ग्राम्य-जीवन का विशद वर्णन है। पात्रों के नाम तक में ग्रामीणता भरी है। उनके नामों से हमें काफी सन्तोष मिलता है—भानु चौधरी के लड़के वितान, शान और गुमान चौधरी, मिठाई बेचने वाला गुरदीन ; गुमान चौधरी का लड़का धान। गुमान के व्यसन—मुहर्रम में ढोल बजाना, मछली फँसाना, दंगल में भाग लेना। इस ग्राम्य-जीवन के चितेरे में अवश्य ही दैवी शक्ति है।

किन्तु बार-बार हमारे मन में उठता है कि प्रेमचन्द मध्य-वर्ग के मनुष्यों को नहीं पहचानते, विशेषकर नगर के मध्य-वर्ग को। न इनसे प्रेमचन्द को कुछ सहानुभूति ही है। जिस प्रकार ग्राम में इतनी पीड़ा होते हुए भी ग्रामीण के हृदय में उदारता है,

उसी तरह अनेक नागरिक भी हृदय की काव्य-तरंगें छिपाये पड़े हैं। रवि बाबू इन्हें खूब पहचानते हैं।

प्रेमचन्द की विशेष अ-कृपा उन व्यक्तियों पर है जो पश्चिम की संस्कृति के दास हो चुके हैं। उन्हें नीति और धर्म का ज्ञान नहीं। 'धर्म-संकट' नाम की कहानी में कामनी को अच्छी-भली अ-सती बना दिया है। जब देश में ऐसी जाग्रति हो रही है और अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति हमारा अनुराग बढ़ रहा है, तब ऐसा दृष्टिकोण स्वाभाविक भी है।

परन्तु कलाकार पर एक विशेष उत्तरदायित्व होता है। कला, धर्म और नीति से भी परे है। 'प्रेम-पूर्णिमा' की कुछ कहानियों से हमें ऐसा भासित हुआ कि यदा-कदा उनकी कला धर्म आदि के आडम्बर से दब गई है। 'सेवा-मार्ग', 'शिकारी राजकुमार' और 'ज्वालामुखी' कुछ इसी प्रकार की कहानियाँ हैं।

कहानी के इतिहास में नैतिक कथा का स्थान बहुत नीचा है। 'हितोपदेश' और 'ईसॉप' की कथाएँ बच्चे ही अधिक चाव से पढ़ते हैं। इसी प्रकार टॉल्सटॉय ने अपनी कला को हानि पहुँचाई थी।

कभी-कभी तो ईसॉप की कथाओं के नैतिक विचार की भाँति प्रेमचन्द भी अपनी कहानियों का अन्त भाग मोटे अक्षरों में छापते हैं। 'यही ईश्वरी न्याय है'; 'यह सच्चाई का उपहार है'; 'यही महातीर्थ है' आदि।

हिन्दी के सौभाग्य से प्रेमचन्द की कला का यह रूप अस्थिर था। कला की गति के साथ वह भी गया। धर्म और नीति समय के अनुसार रूप बदल लेते हैं। कला का रूप इन सब से परे विश्व-व्यापी है।

'प्रेम-पचीसी' नाम के संग्रह में प्रेमचन्द की कला में कुछ

नये अणु दीखे। इन कहानियों के लिखने के समय सत्याग्रह का बवंडर चल रहा होगा। प्रेमचन्द के व्यक्तित्व का एक मनोहर अंश उनकी गान्धी-भक्ति है। अपनी कला से जो कुछ देश की सेवा वह कर सके, उन्होंने की। 'सुहाग की साड़ी', 'दुस्साहस' आदि राजनीतिक रंग लिये कहानियाँ हैं। 'आदर्श-विरोध' और 'पशु से मनुष्य' भी इसी गहन समस्या पर विचार हैं। गान्धी आन्दोलन का सुन्दर रूप कला में कनु देसाई ने दिखाया। प्रेमचन्द की कला को भी हम इस देश-व्यापी संग्राम की प्रतिध्वनि से अलग नहीं कर सकते।

'मूठ' और 'नाग-पूजा' में ऐसा लगता है कि शायद प्रेमचन्द जादू आदि पर विश्वास करते हों। जीवन में इतने रहस्य भरे पड़े हैं कि मनुष्य की ज्ञान-बुद्धि चकरा जाती है।

प्रेमचन्द पशु-जीवन से भी भली-भाँति परिचित हैं। 'स्वत्व-रक्षा' एक घोड़े के चरित्र का दर्शन है। 'पूर्व-संस्कार' में जवाहर नाम के बैल का अच्छा वर्णन है। उनकी कहानियों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे।

'दफ़्तरी', 'बौड़म', 'विध्वंस', आदि सूक्ष्म चरित्र-चित्र हैं। इस कला में प्रेमचन्द खूब दक्ष हैं। यदि ऐसे चित्र एकत्रित किये जायँ तो शायद ही जीवन का कोई अंग इनसे अछूता पाया जाय। 'प्रेम-पचीसी' की सर्वोत्तम कहानियों में 'बूढ़ी काकी' अवश्य गिनी जायगी। यह कहानी बड़ी सच्ची और मर्मभेदी है। 'लोकमत का सम्मान' उनकी अच्छी कहानियों से टक्कर ले सकती है।

किन्तु प्रेमचन्द को शायद 'आत्माराम' अधिक भाती थी। इसे उन्होंने 'प्रेम-द्वादशी' में भी स्थान दिया है। कहानी मनोरंजक है। किन्तु इसकी विशेषता घटना-प्राधान्य है।

इस संग्रह में प्रेमचन्द का अपनी कला पर पूर्ण अधिकार है। कहानियों में एक प्रकार की सरलता-सी है। किन्तु जिस आशा को लेकर हम 'सप्त-सरोज' छोड़कर उठे थे, वह अभी पूर्ण नहीं हुई। कलाकार किसी एक लकीर का ही फ़कीर नहीं होता।

'प्रेम-प्रतिमा' नाम के संग्रह में प्रेमचन्द ने उस आशा को पूरा किया।

(४)

'प्रेम-प्रतिमा' की कहानियाँ हिन्दी के उस जागृति-काल की हैं जब 'माधुरी' के प्रकाशन ने हिन्दी में नव-जीवन-संचार किया था। इन कहानियों में प्रौढ़ता, रस, विनोद सभी हैं।

'मुक्ति-धन', 'डिग्री के रुपए', 'दीक्षा', 'शतरंज के खिलाड़ी' आदि कहानियाँ उनकी कला के सर्वोच्च शिखर पर हैं। इन कहानियों को पढ़कर ऐसा लगता है कि यह प्रेमचंद के जीवन का मधु-मास था। इन कहानियों में विचित्र स्फूर्ति और हृदय की उमङ्ग है।

'बूढ़ी काकी' में विनोद की झलक है; हृदय की व्यथा भी है। इस संग्रह में अनेक कहानियाँ ऐसी हैं, जिनमें निरा विनोद-भाव है।

'मनुष्य का परम धर्म', 'गुरु-मंत्र', 'सत्याग्रह' आदि इसी प्रकार की कहानियाँ हैं। इनमें हिंदुओं के पूज्य पण्डों का अच्छा ख़ाका खींचा है।

इस संग्रह में प्रेमचंद की भाषा भी खूब निखर गई है। मदिरा का वर्णन देखिये, 'सफेद बिल्लौर के गिलास में बर्फ़ और सोडावाटर से अलंकृत अरुण-मुखी कामिनी शोभायमान थी।' (दीक्षा) और देखिये—'उषा की लालिमा में, ज्योत्सना

की मनोहर छटा में, खिले हुए गुलाब के ऊपर सूर्य की किरणों से चमकते हुए तुषार-बिंदु में भी वह सुषमा और शोभा न थी, श्वेत-हिम-मुकुटधारी पर्वतों में भी वह प्राण-प्रद शीतलता न थी, जो बिन्नी अर्थात् विंध्येश्वरी के विशाल नेत्रों में थी।' (भूत) भाषा का प्रवाह काव्यमय हो गया है।

इस संग्रह की अनेक कहानियाँ मुस्लिम संस्कृति में रँगी हैं—'क्षमा', 'शतरञ्ज के खिलाड़ी', 'वज्रपात', 'लैला'। प्रेमचन्द की शैली इस विषय के सर्वथा अनुकूल है। कुछ उर्दू साहित्य के बन्धन से, कुछ गान्धी के हिंदू-मुसलिम ऐक्य के पाठ से प्रेमचन्द मुसलिम संस्कृति को बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं।

'शतरञ्ज के खिलाड़ी' बड़े ऊँचे दर्जे की कहानी है। इसमें लखनऊ के नवाबी राज्य का सन्ध्या-काल दिखाया है। लेखनी में वही ओज और मार्मिकता है जो हम हसन निज़ामी की पुस्तक 'मुग़लों के अन्तिम दिन' में देखते हैं—'वाजिदअली शाह का समय था। लखनऊ विलासिता के रङ्ग में डूबा हुआ था। छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब सभी विलासिता में डूबे हुए थे। कोई नृत्य और गान की मजलिस सजाता था तो कोई अफ़ीम की पीनक ही के मज़े लेता था। जीवन के प्रत्येक विभाग में आमोद-प्रमोद का प्राधान्य था। शासन-विभाग में, साहित्य-क्षेत्र में, सामाजिक व्यवस्था में, कला-कौशल में, उद्योग-धन्धों में, आहार-व्यवहार में, सर्वत्र विलासिता व्याप्त हो रही थी। राजकर्मचारी विषय-वासना में, कविगण प्रेम और विरह के वर्णन में, कारीगर कलाबत्तू और चिकन बनाने में, व्यवसायी सुरमे, इत्र, मिसरी और उपटन का रोज़गार करने में लिप्त थे। सभी की आँखों में विलासिता का मद छाया था। संसार में क्या हो रहा है, इसकी किसी को ख़बर न थी। बटेर लड़ रहे

हैं। तीतरों की लड़ाई के लिए पाली बदी जा रही है। कहीं चौसर बिछी हुई है; पौ-बाहर का शोर मचा हुआ है। कहीं शतरञ्ज का घोर संग्राम छिड़ा हुआ है। राजा से लेकर रङ्क तक इसी धुन में मस्त थे। यहाँ तक कि फ़क़ीरों को पैसे मिलते तो वे रोटियाँ न लेकर अफीम खाते या मदक पीते। शतरंज, ताश, गँजीफा खेलने से बुद्धि तीव्र होती है। विचार-शक्ति का विकास होता है, पेचीदा मसलों को सुलझाने की आदत पड़ती है। ये दलीलें ज़ोरों के साथ पेश की जाती थीं।'

'बाबाजी का भोग', 'मनुष्य का परम धर्म' और 'गुरु-मन्त्र' प्रेमचन्द की शैली में भारी परिवर्तन की द्योतक हैं। इनमें भावों के उतार-चढ़ाव, घटना-चक्र-व्यूह, मनोवैज्ञानिक गुत्थियाँ आदि कुछ नहीं। यह जीवन की केवल झाँकी मात्र है। कहानी-कला का इनसे निकट सम्बन्ध है। इन्हें अँग्रेज़ी में Slices from life कहते हैं। जैनेन्द्रजी ने इसी कला को अपनाया है। कभी-कभी तो यह कहानी निबन्ध-मात्र होती हैं। इनका न कुछ आदि है, न अन्त है। केवल वास्तविक जीवन का एक टुकड़ा काट कर आपके सामने रख दिया गया है।

कला के सिद्धान्त छोड़ कर जो रस 'बड़े घर की बेटी' अथवा टैगोर की 'समाप्ति' जैसी कहानियों में है, वह जीवन के इन अपूर्ण अवयवों में नहीं।

'मानसरोवर' में इस नवीन शैली की कहानियाँ यथेष्ट संख्या में हैं: 'मुफ्त का यश', 'बड़े भाई साहब', 'गृह-नीति', 'ठाकुर का कुआँ', 'झाँकी', 'आखिरी हीला', 'गिला' इत्यादि। इन कहानियों का अन्त बड़ा स्वाभाविक है। जीवन में मृत्यु, आत्म-हत्या आदि ही नाटक का-सा अन्त नहीं होते। पहली कहानियों में प्रेमचन्द ऐसा अन्त बहुधा पसन्द करते थे।

'मानसरोवर' के प्राक्कथन में प्रेमचन्द ने कहा है, अब हिन्दी गल्प-लेखकों में विषय और दृष्टिकोण और शैली का अलग-अलग विकास होने लगा है। कहानी जीवन से बहुत निकट आ गई है। उसकी ज़मीन अब उतनी लम्बी-चौड़ी नहीं है। उसमें कई रसों, कई चरित्रों और कई घटनाओं के लिए अब स्थान नहीं रहा। वह अब केवल एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का, सजीव, स्पर्शी चित्रण है।......'

इस शैली की कहानियों में 'गिला' बड़ी सुन्दर है। यह चरित्र-झाँकी है। भाषा प्रवाहमय है।

यह स्पष्ट है कि 'मानसरोवर' की रचना के काल में प्रेमचन्द अपनी कला के एक-छत्र अधिपति थे। 'गो-दान' से यह भावना और भी दृढ़ हो जाती है। 'अलग्योझा', 'ईदगाह' आदि कहानी उनकी रचना के शिखर पर हैं। यह लगभग उसी कोटि की हैं जिसमें शरत् बाबू की कहानी 'बिन्दो का लड़का'। वही स्वाभाविकता, वही सरलता, कथा में वही धारा-प्रवाह।

हिन्दी के दुर्भाग्य से जब प्रेमचन्द की कला इतनी परिपक्व, उनकी-शैली इतनी प्रौढ़ और उनकी भाषा इतनी रसमय हो गई थी, उनका निधन हो गया।

(५)

कलाकार अपने स्वतन्त्र जग की सृष्टि करता है। एक क्षण के लिए प्रेमचन्द के सृजित संसार को देखिये।

'यहाँ कृषक-वृन्द ऋण और कष्ट से मुक्त, सुखी और स्वतन्त्र हैं। पूस की रात में वह आग के सामने तापते हुए पूर्वजन्म की कथा कहते हैं और सुख के गाने गाते हैं। ज़मीदारों का और सरकारी कर्मचारियों का मान-मर्दन हो चुका। वह किसी

अतीतकाल की कथा के समान मिथ्या और दूर हैं। यह राम-राज्य का पुनरागमन है।

'मध्य वर्ग उदार, दयापूर्ण और सुसंस्कृत है। इनके जीवन पर भारत की प्राचीन संस्कृति की छाप है। यहाँ भारत की आत्मा भारतीय कलेवर में दीखेगी। पश्चिम के भौतिक रंग का यहाँ नाम-निशान भी नहीं।

'यदि इस संसार में कोई रईस हैं, तो बिड़ला-बन्धुओं की भाँति दानी और दयालु हैं।

'इस जग में कोई झगड़ा, कलह और अशान्ति नहीं। यहाँ हिन्दू और मुस्लिम एक दूसरे की संस्कृति को स्नेह और आदर की दृष्टि से देखते हैं।

यहाँ आपको सब प्रकार के जीव मिलेंगे। दफ्तरी, धोबी, बौड़म, ओझे, किसान, कहार, चमार; किन्तु सब नीयत के साफ और हृदय के उदार।

मुस्लिम संस्कृति के यहाँ आपको बड़े उच्च आदर्श दीखेंगे। किस प्रकार दाऊद ने अपने पुत्र की हत्या करनेवाले को क्षमा कर दिया, तैमूर का पाषाण-हृदय कैसे हमीदा के विचारों से पिघला, लैला के संगीत से किस प्रकार फ़ारस का राजकुमार विमूढ़ होकर फकीर हो गया।

क्या यह जग केवल कल्पना-मात्र है? साम्यवाद के भक्त इस जग में विश्वास नहीं करते। यह गान्धीवाद है। केवल एक आदर्श है। किन्तु कलाकार तो मीठे स्वप्न ही देखा करता है।

श्री चन्द्रगुप्त विद्यालंकार ने प्रेमचन्द को मूक-जनता का प्रतिनिधि कहा है। रवि बाबू और शरत् बाबू से तुलना करने में यदि प्रेमचन्द कुछ हल्के उतरते हैं तो यह प्रेमचन्द अथवा हिन्दी की कोई मानहानि नहीं। प्रेमचन्द का क्षेत्र ग्रामीण-जग

और किसानों का हृदय है। यहाँ वे अद्वितीय हैं। किन्तु भावों की जिस गहराई में रवि बाबू अथवा शरद् बाबू पैठते हैं, वह अभी प्रेमचन्द की सीमा से बाहर थी।

मनुष्य में प्रेमचन्द का अटल विश्वास है। अपने संसार में अनेक उदार-चित्त मनुष्यों को उन्होंने बसाया है। अवसर पड़ने पर यह सब बहुत ऊँचे उठ जाते हैं। 'बड़े घर की बेटी', 'पंच-परमेश्वर' अवसर पर कोई नीचा नहीं रहता।

इस प्रकार के चित्रण के लिए स्वयं अपने पास विशाल हृदय होना चाहिये। यही प्रेमचन्द की सबसे बड़ी विभूति है।

•

महादेवी वर्मा

सुन्दर मखमल के कोमल कालीनों से भरा कमरा, मन्द-मन्द स्मित हास्य बखेरता दीपक, बाहर तारों से भरा अनन्त आकाश, गुन-गुन करती कवयित्री की वाणी—ऐसी कल्पना हमारे मन में उठती है। पता नहीं कहाँ तक सच है। कम से कम श्रीमती महादेवी वर्मा के कविता-संसार का तो यह ठीक ही चित्र लगता है।

घुल-घुलकर गलनेवाली शमा, मजार पर जलाया दीपक, ओस के आँसू, कोई अनन्त प्रतीक्षा, अनन्य विरह, आपकी कविता का ध्यान करते ही ये चित्र हमारी कल्पना में घूम जाते हैं।

'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सान्ध्य गीत' आपकी यात्रा के चरण-चिह्न हैं। आपको काव्य-साधना में निरत हुए दस-बारह वर्ष हो चुके हैं, कुछ अधिक ही। छायावादी पन्त से प्रभावित 'नीहार' के झिलमिल उदय से अब तक आपके काव्य का प्रचुर विकास और प्रसार हो चुका है। 'रश्मि' और 'नीरजा' में आपकी काव्य-प्रेरणा पूर्ण वयःप्राप्त और प्रौढ़ हो चुकी है। 'सान्ध्य-गीत' क्या सचमुच आपके काव्य-जीवन का सान्ध्य-गीत होगा ? क्योंकि आपकी प्रगति के पग कुछ मन्द और हलके पड़ चले हैं। आपके गीतों में पच्चीकारी अधिक और भावना कम हो चली है। आपका मौन अधिकाधिक गहरा और गंभीर होता जा रहा है। इसी लिए यह आशंका मन में उठती है।

आज श्रीमती महादेवी वर्मा का आसन हिन्दी काव्य-जगत् में बहुत ऊँचा है। 'नीहार' के बाद से ही आपकी प्रतिभा का स्वतन्त्र विकास हुआ और अब आपके काव्य के अनेक गुण हमको अनायास ही स्मरण हो आते हैं—अतिरंजित भावना, कल्पना, निराशा, शब्द-विन्यास, रेखा-चित्र, अमिट वेदना, एक अनन्त खोज; इन गुणों की आधुनिक हिन्दी काव्य पर स्पष्ट छाप है।

'नीहार' में श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य की रूप-रेखा बन रही है। एक अव्यक्त पीड़ा इन छन्दों में भी है, किन्तु उसका कोई स्थिर रूप नहीं। कवयित्री के मन में एक हूक उठती है, वह गाने लगती है—इससे कुछ मतलब नहीं क्या। इन गीतों में एक कहीं कुछ दूर की पुकार है, पवन का एक झोंका, लहरों की एक करवट, तारों का मूक सन्देश।

'जब असीम से हो जायेगा
मेरी लघु सीमा का मेल—'

इस पुकार को 'छायावाद' कहा गया है। पन्त के 'मौन निमन्त्रण' में इस छायावाद का सुन्दर, सुगढ़ स्वरूप हमें देखने को मिलता है, इस कविता का तत्कालीन तरुण गीतकारों पर अनन्य प्रभाव पड़ा। चतुर्दिक इसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ी। विस्मय-भाव ही इस छायावाद का प्रधान गुण था।

झकोरों से मोहक सन्देश
कह रहा हो छाया का मौन,
सुप्त आहों का दीन विषाद
पूछता हो, आता है कौन'?

अथवा—

‘अवनि-अम्बर की रुपहली सीप में
तरल मोती-सा जलधि जब काँपता,
तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज-से,
ज्योत्सना के रजत पारावार में,

... ...

सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास-सा वह कौन है ?’

श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य में गीत-भावना प्रधान है। गीति-काव्य अन्तर्मुखी और अहम् में लीन होता है। हिंदी का आधुनिक गीति-काव्य क्यों अतर्मुखी है, इसके कारण देश की सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में मिलेंगे। ‘एक बार’ श्रीमती वर्मा भी भारत की दशा पर क्रन्दन कर उठी हैं :

‘कहता है जिनका व्यथित मौन
हम-सा निष्फल है आज कौन ?
निर्धन के धन-सी हास-रेख
जिनकी जग ने पाई न देख,
उन सूखे ओठों के विषाद
में मिल जाने दो हे उदार !
फिर एक बार बस एक बार !’

अतः आपने जीवन की पीड़ा से भाग कर गीत में शरण ली, किंतु पीड़ा गीत में बिधी ही रही। गीत का निर्भर अवश्य अजस्र वेग से बह निकला—

'चुभते ही तेरा अरुण बान।
बहते कन-कन से फूट-फूट,
मधु के निर्झर से सजल गान।'

आप स्वयं कहती हैं—'हिंदी काव्य का वर्तमान नवीन युग गीत-प्रधान ही कहा जायगा। हमारा व्यस्त और वैयक्तिक प्रधान्य से युक्त जीवन हमें काव्य के किसी और अंग की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश ही नहीं देना चाहता। आज हमारा हृदय ही हमारे लिए संसार है। हम अपनी प्रत्येक साँस का इतिहास लिख रखना चाहते हैं, अपनी प्रत्येक कम्पन को अंकित कर लेने के लिए उत्सुक हैं और प्रत्येक स्वप्न का मूल्य पा लेने के लिए विकल हैं।'

'नीरजा' और 'सान्ध्य गीत' में आपका गायन बहुत मीठा और भीना हो गया है, जैसे गीत दुःख से बोझिल आत्म-विस्मृत-सा हो उठा हो। आपने अपने प्राणों की जीवन-बाती जलायी है, किंतु वह अब मंद-मंद जलती है :

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल!
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर!
सौरभ फैला विपुल धूप बन;
मृदुल मोम-सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित
तेरे जीवन का अणु गल-गल!
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल!'

इन गीतों का अपना विशेष गुण एक मधुर पीड़ा-भार है जो 'नीरजा' और 'सान्ध्य गीत' में कुछ हद तक अश्रुधार में भीगकर बह चुका है। कम से कम उसकी टीस अब उतनी असह्य नहीं। 'रश्मि' की भूमिका में कवयित्री ने अपने दुःख-वाद का कुछ संकेत दिया है—

'सुख और दुःख के धूपछाहीं डोरों से बुने हुए जीवन में मुझे केवल दुःख ही गिनते रहना क्यों इतना प्रिय है, यह बहुत लोगों के आश्चर्य का कारण है।...संसार जिसे दुःख और अभाव के नाम से जानता है, वह मेरे पास नहीं है। जीवन में मुझे बहुत दुलार, बहुत आदर और बहुत मात्रा में सब कुछ मिला है, परन्तु उस पर दुःख की छाया नहीं पड़ सकी। कदाचित् यह उसी की प्रतिक्रिया है कि वेदना मुझे इतनी मधुर लगने लगी है!

'इसके अतिरिक्त बचपन से ही भगवान बुद्ध के प्रति एक भक्तिमय अनुराग होने के कारण उनकी संसार को दुःखात्मक समझनेवाली फिलॉसफी से मेरा असमय ही परिचय हो गया था।

'अवश्य ही उस दुःखवाद को मेरे हृदय में एक नया जन्म लेना पड़ा, परन्तु आज तक उसमें पहले जन्म के कुछ संस्कार विद्यमान हैं, जिनसे मैं उसे पहिचानने में भूल नहीं कर पाती।

'दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँध रखने की क्षमता रखता है।......विश्व-जीवन में अपने जीवन को, विश्व-वेदना में अपनी वेदना को, इस प्रकार मिला देना जिस प्रकार एक जल-बिन्दु समुद्र में मिल जाता है, कवि का मोक्ष है।'

महादेवी वर्मा के काव्य की यह भावना कवि की सहज-

प्रिय और बोधगम्य पीड़ा भी हो सकती है जो गीतों को, 'शेली' के अमर शब्दों में, मीठा बनाती है। किन्तु हमें मानना होगा कि आधुनिक हिन्दी काव्य का निराशावाद युग-धर्म से प्रेरित होकर संक्रान्ति-कालीन समाज की वेदना भी व्यक्त करता है, क्योंकि—

'एक जो होइ तो ज्ञान सिखाइये,
कूप ही में इहाँ भाँग परी है!'

'रश्मि' के गीतों में यह दुःख पतङ्ग के समान जल-जल उठता है। इस दुःख की अभिव्यक्ति में एक अधीरता, आतुरता और अस्थिरता-सी है :

"मृग मरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर'

'नीरजा' और 'सान्ध्य-गीत' में यह दुःखवाद शान्त, स्निग्ध और कोमल रूप धारण कर चुका है। आप कहती हैं :

मुखर पिक! हौले बोल,
हठीले हौले हौले बोल!

आपका दुःखवाद यहाँ नीरज में बन्द भौंरे के समान केवल मन्द, मधुर, मत्त गुञ्जन कर झूम रहा है। 'सान्ध्य-गीत' के वक्तव्य में आप लिखती हैं—'दुःखातिरेक की अभिव्यक्ति आर्त्त क्रन्दन या हाहाकार द्वारा भी हो सकती है, जिसमें संयम का नितान्त अभाव है, उसकी अभिव्यक्ति नेत्रों के सजल हो जाने में है। जिसमें संयम की अधिकता के साथ आवेग के भी अपेक्षाकृत संयत हो जाने की सम्भावना रहती है, उसका

प्रकाशन एक दीर्घ निःश्वास में भी है, जिसमें संयम की पूर्णता भावातिरेक को पूर्ण नहीं रहने देती, और उसका प्रकटीकरण निस्तब्धता द्वारा भी हो सकता है जो निष्क्रिय बन जाती है। वास्तव में गीत के कवि को आर्त्त क्रन्दन के पीछे छिपे हुए संयम से बाँधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा।'

इस वक्तव्य की सहायता से हम आपके दुःखवाद का इतिहास समझ सकेंगे। क्रन्दन, सजल नयन, दीर्घ निश्वास, फिर निस्तब्धता—यह विकास का स्वाभाविक क्रम है।

हम श्रीमती महादेवी वर्मा के काव्य को एक अनोखी चित्र-शाला के रूप में भी देख सकते हैं। आपके छन्द अधिकतर शब्द-चित्र हैं। आपकी अलंकृत भाषा और प्रकृति-साधना शब्द-चित्रों में ही व्यक्त हुई है। आपके विचारों की अभिव्यक्ति सहज ही रूपक में होती है, क्योंकि आपकी अन्तरात्मा काव्या-सिक्त है:

'नयन की नीलम-तुला पर मोतियों से प्यार तोला ;

कर रहा व्यापार कब से मृत्यु से यह प्राण भोला !'

प्रकृति-बाला के अगणित, अनुपम चित्र आपकी कविता में हैं। इनमें निरीक्षण की मात्रा कम हो सकती है, किन्तु चिन्तन की नहीं। ये चित्र कल्पना-प्रधान हैं। हम आपके प्रकृति-चित्र को एक विशाल तम के पट-रूप में देखते हैं और उस पटभूमि पर झिलमिलाते तारक-दीप अथवा चाँदनी की स्मित हँसी, क्योंकि तम ही आपको प्रिय है—

'करुणामय को भाता है

तम के परदों में आना,

हे नभ की दीपावलियो !
तुम पल भर को बुझ जाना।

किन्तु,

'तममय तुषारमय कोने में
छेड़ा जब दीपक-राग एक,
प्राणों-प्राणों के मन्दिर में
जल उठे बुझे दीपक अनेक!'

आपके अलबम में प्रकृति के अनेक रेखा-चित्र दृढ़, सुष्ठ रेखाओं में अंकित हैं—

कनक-से दिन, मोती-सी रात,
सुनहली साँझ, गुलाबी प्रात ;
मिटाता रँगता बारम्बार,
कौन जग का यह चित्राधार ?

शून्य नभ में तम का चुम्बन,
जला देता असंख्य उडुगन ;
बुझा क्यों उनको जाती मूक
भोर ही उजियाले की फूँक ?

× × ×

गुलालों से रवि का पथ लीप
जला पश्चिम में पहला दीप,
बिहँसती संध्या भरी सुहाग,
दृगों से झरता स्वर्ण-पराग ;

उसे तम की बढ़ एक झकोर,
उड़ा कर ले जाती किस ओर?'

तम के झकझोरों से अपने क्षीण दीपक को अंचल में ढाँपकर बचाने का प्रयत्न कर रही रजनी-बाला—किसी अनन्त प्रतीक्षा में लीन—प्रकृति का वह रूप आप निरन्तर देखती हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा के गीतों का एक बड़ा आकर्षण उनकी किन्हीं अनमोल साँचों में गढ़ी भाषा है। भाषा के लिहाज से आप आज हिन्दी के किसी भी कवि से आगे हैं। पन्तजी की भाषा क्लिष्ट और संस्कृत-भार से आक्रान्त है। 'निराला' के शब्दों में अबाध वेग अवश्य है, किन्तु उनकी भाषा में यह पच्चीकारी कहाँ! अन्य कवियों में इस प्रकार चुन-चुनकर मोतियों की जड़ाई नहीं मिलती। भगवतीचरण वर्मा और बच्चन फौरन उर्दू की शरण लेते हैं। किन्तु इस मधुर-निर्झरिणी का मदिर कलकल निनाद अद्वितीय है। यह शब्दों की शिल्पकला आपकी निजी विशेषता है।

यह भाषा अलंकार-भार से झुकी अवश्य है। किन्तु बड़े चतुर कारीगरी के गढ़े ये अलंकार हैं। एक-एक शब्द चुन-चुन कर इस शिल्पी ने सजाया है—

'दुख से आविल, सुख से पंकिल ;
बुद्बुद् से स्वप्नों से फेनिल—'

'युग-युग से अधीर' कवियित्री की भाषा है। आपके अधिकतर शब्द अमिश्रित संस्कृत से निकले हैं और आपकी ध्वनियाँ सदैव कोमल हैं। हिन्दी-काव्य-परम्परा में बिहारी, देव, केशव और मतिराम इसी श्रेणी के शिल्पी थे। शब्दों के इस मदिर

आसव से बेसुध पाठक ध्वनि-चमत्कार में लीन रह जाता है। इन शब्द-चित्रों के पीछे क्या है, वह नहीं पूछता।

महादेवी वर्मा की कविता भावना और कल्पना-प्रधान है। कोई निर्मम बुद्धिवाद इस काव्य की पटभूमि नहीं। कुछ खोजते हुए का भाव निरन्तर इस कविता में है। तड़ित के समान एक शब्द या वाक्य का आलोक इस काव्याकाश में पलभर के लिए हो जाता है, फिर वही गहनतम अँधेरा; और क्षीण दीपक की जुगनू-सी ज्योति में किसी अनजाने प्रियतम की खोज और प्रतीक्षा। चिर विरह और निराशा ही इस काव्य के प्राण और आधार हैं, किन्तु चिर मिलन का भाव भी अनायास ही गीत में पुलक उठता है—

तुम मुझ में प्रिय! फिर परिचय क्या?
रोम-रोम में नन्दन पुलकित;
साँस-साँस में जीवन शत शत;
स्वप्न-स्वप्न में विश्व अपरिचित;
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय!
स्वर्ग मुझे क्या, निष्क्रिय लय क्या?'

'रश्मि' में आप कहती हैं—

'मैं तुम से हूँ एक, एक हैं
जैसे रश्मि प्रकाश;
मैं तुम से हूँ भिन्न, भिन्न ज्यों
घन से तड़ित् विलास।'

इस भावना को हम महादेवी का रहस्यवाद कह सकते हैं। साधक की चिर खोज से निरन्तर यह काव्य आप्लावित है—

'पथ देख बिता दी रैन
मैं प्रिय पहचानी नहीं !
तम ने धोया नभ-पंथ
सुवासित हिमजल से ;
सूने आँगन में दीप
जला दिये झिलमिल से ;
आ प्रात बुझा गया कौन
अपरिचित, जानी नहीं
मैं प्रिय पहचानी नहीं !'

चिर अतृप्ति की प्यास से यह काव्य आक्रान्त है—

'तुम्हें बाँध पाती सपने में
तो चिर जीवन-प्यास बुझा
लेती उस छोटे क्षण अपने में !'

इस अनन्य साधना के बाद कवयित्री ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मोम के समान गल-गलकर ही साधक जीवन सार्थक करता है और अपने प्रिय से मिलता है तथा मर मिटने में ही चिर-मिलन की निद्रा है—

'तम में हो चल छाया का क्षय ;
सीमित की असीम में चिर लय ;
एक हार में हों शत-शत जय ;

सजनि ! विश्व का कण-कण मुझको
आज कहेगा चिर सुहागिनी !'

इस प्रकार जहाँ आपकी कविता का एक छोर आधुनिक छायावाद को छूता है, दूसरा हिन्दी के भक्त और रहस्यवादी कवियों की काव्य-परम्परा को भी। आप हमारी परम्परागत काव्य-साधना का नयी रूप-रेखा देकर कई पग आगे बढ़ाती हैं :

'है युगों की साधना से
प्राण का क्रन्दन सुलाया ;
आज लघु जीवन किसी
निःसीम प्रियतम में समाया !'

●

आधुनिक हिन्दी कविता के चार आधार-स्तंभ

[१]

कामायनी

'प्रसाद' की 'कामायनी' हिन्दी के अमर काव्य-ग्रन्थों में अपना आसन लेगी, यह बात इसको एक बार पढ़ते ही मन में उठती है।

'कामायनी' में 'तितली' और 'कामना' से भी रुपहला स्वरूप लेकर उनकी कल्पना प्रकट हुई है। 'प्रसाद' जी उच्च-कोटि के कवि हैं; गल्पकार, उपन्यासकार अथवा नाट्यकार उस श्रेणी के नहीं, ऐसी हमारी भावना थी, उनके नाटकों अथवा कहानियों का विशेष आकर्षण उनकी काव्यमय कल्पना है। 'कामायनी' में उनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुई है। यहाँ गीति और प्रबन्ध-काव्य का अद्भुत सम्मिश्रण हुआ है।

'कामायनी' का विषय आदि-पुरुष मनु और मानव-इतिहास की प्राचीनतम घटना जल-प्लावन की प्रलय है। एक प्रकार 'साकेत' और 'प्रिय-प्रवास' की कथा से भी ऊँचा यह कथानक उठता है। यहाँ मनुष्य के निगूढ़तम भावों की गुत्थियाँ तो नहीं, किन्तु विश्व-सृजन का झिलमिल अरुणोदय और आदिम युग का इतिहास अवश्य मिलेगा। Dante की Divine Comedy और Milton के Paradise Lost में भी कुछ इसी प्रकार का कथानक-गौरव है।

इस कथानक के कुछ अंश ऋग्वेद, छांदोग्य उपनिषद्, शतं-पथ ब्राह्मण आदि से लिये गये हैं। कथा-शृङ्खला मिलाने के लिए कवि ने स्वतन्त्र कल्पना का भी यथेष्ट प्रयोग किया है। मनु ने श्रद्धा के सहयोग से देवों से विलक्षण एक नवीन संस्कृति का अनुष्ठान किया। मनु इतिहास के पहले विप्लववादी थे। जीवन से असन्तुष्ट होकर वह कहते हैं :

'देव न थे हम और न ये हैं,
सब परिवर्तन के पुतले ;
हाँ—कि गर्व-रथ में तुरंग-सा ;
जितना जो चाहे जुत ले।'

इड़ा के प्रभाव से मनु ने बुद्धिवाद का आश्रय लिया और राज्य-स्थापना की ; किन्तु अधिक सुख की खोज में दुःख ही मिला।

'इड़ा डालती थी वह आसव जिसकी बुझती प्यास नहीं।'

अथवा,

'देश बसाया पर उजड़ा है सूना मानस देश यहाँ।'

कथा में एक प्रकार के रूपक का भी आभास मिलता है। श्रद्धा और मनन के सहयोग से मानवता का विकास हुआ। बुद्धि के विकास से मानव ने नवीन पथों पर सुख की खोज की। फिर भी वह पूछता है :

'तो फिर क्या मैं जिऊँ और भी,
जीकर क्या मरना होगा ?

देव ! बता दो, अमर वेदना
लेकर कब मरना होगा ?'

कथानक का प्रवाह पहले सर्गों में धीमा है। जैसे चिन्ता, आशा, काम, लज्जा आदि शीर्षक लिए स्वतंत्र गीत-काव्यों की रचना कवि ने की हो। इन छन्दों को बार-बार और फिर-फिर पढ़ने की इच्छा होती है।

'ओ चिन्ता की पहली रेखा,
अरी विश्व-वन की व्याली ;
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कंप-सी मतवाली !'

किन्तु पिछले भाग में कथा का श्रोत फूट निकला है, और उसकी गति प्रबल हो गई है। छन्द-परिवर्तन आदि से और सजग कल्पना से 'प्रसाद'जी ने कथा को कभी नीरस नहीं होने दिया।

'कामायनी' में तीन चरित्र-चित्र हैं, मनु, श्रद्धा और इड़ा। मनु के चरित्र में भारी हलचल है ; उनकी वाणी में बहुधा 'प्रसाद' की आत्मा प्रतिध्वनित हुई है। मनुष्य-मात्र के वह प्रतिनिधि हैं। श्रद्धा के चित्रण में सबसे अधिक अनुभूति है। इड़ा के चरित्र की रेखा सुस्पष्ट है, यद्यपि उनमें अधिक रङ्ग नहीं भी भरा गया।

मनु कहते हैं :

'तुम कहती हो विश्व एक लय है, मैं उसमें
लीन हो चलूँ ? किन्तु धरा है क्या सुख इसमें ?

क्रन्दन का निज अलग एक आकाश बना लूँ,
उस रोदन में अट्टहास हो तुमको पालू।
फिर से जलनिधि उछल बहे मर्यादा बाहर!
फिर झंझावत हो वज्र प्रगति से भीतर-बाहर!
फिर डगमग हो नाव लहर ऊपर से भागे!
रवि-शशि-तारा सावजान हों, चौंकें, जागें।

आदि पुरुष के चरित्र में जिस गांभीर्य और शान्ति की आशा की जा सकती है, वह यहाँ नहीं।

श्रद्धा के चित्र में उन्होंने सुन्दर रङ्ग भरे हैं :

'मसृण गांधार देश के, नील
रोम वाले मेषों के चर्म
ढँक रहे थे उसका बपु कान्त
बन रहा था वह कोमल वर्म।'

'नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।'

'आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम—
बीच जब घिरते हों घनश्याम;
अरुण रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छबि धाम।

श्रद्धा कहती है :

'यह आज समझ तो पाई हूँ
मैं दुर्बलता में नारी हूँ;
अवयव की सुन्दर कोमलता
लेकर मैं सबसे हारी हूँ।'

इड़ा मनु को बुद्धिवाद की ओर अग्रसर करती है :

'हाँ तुम ही हो अपने सहाय ?
जो बुद्धि कहे उसको न मान कर फिर किसकी नर शरण जाय,
जितने विचार संस्कार रहे उनका न दूसरा है उपाय,
यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वर्य भरी शोधक विहीन
तुम उसका पटल खोलने में परिकर कसकर बन कर्मलीन !'

श्रद्धा में एक प्रकार की कोमलता है; उसके विपरीत इड़ा कुछ कठिन और कठोर-सी है। श्रद्धा का आत्म-समर्पण पूर्ण हुआ; इड़ा मनु को नियम की मर्यादा में रखना चाहती है। अन्त में विजय श्रद्धा की ही हुई।

प्रकृति कथा के पृष्ठ भाग में निरन्तर उपस्थित रही है। कथानक का चतुर्थ पात्र उसे हम कह सकते हैं। पात्रों की भाग्य-लिपि के अनुसार ही प्रकृति में वसन्त, उषा अथवा प्रलय के चीत्कार प्रकट होते हैं।

जब मनु और श्रद्धा का मिलन हुआ, तब प्रकृति का स्वरूप भी कोमल है :

मधुमय वसन्त जीवन-वन के,
वह अन्तरिक्ष की लहरों में;

कब आये थे तुम चुपके से
रजनी के पिछले पहरों में!
'क्या तुम्हें देख कर आते यों,
मतवाली कोयल बोली थी।
उस नीरवता में अलसाई
कलियों ने आँखें खोली थीं।'

मनु और इड़ा के मत-भेद के साथ ही प्रकृति में भी विप्लव हुआ:

'उधर गगन में क्षुब्ध हुई सब देव-शक्तियाँ क्रोध-भरी,
रुद्र-नयन खुल गया अचानक, व्याकुल काँप रही नगरी।'

अन्त में पाण्डवों की भाँति सत्य की खोज में जब मनु और श्रद्धा गिरि-पथों पर विचरते हैं, तब प्रकृति का रूप शान्त और गम्भीर हो गया है:

ऊर्ध्व देश उस नील-तमस में
स्तब्ध हो रही अचल हिमानी।
पथ थक कर है लीन, चतुर्दिक
देख रहा वह गिरि अभिमानी।'

किन्तु अधिकतर आपको प्रकृति का रुपहला और सुनहला रूप ही पसन्द है:

'उषा सुनहले तीर बरसती
जय-लक्ष्मी-सी उदित हुई।'

'धवल मनोहर चन्द्र-बिम्ब से
अंकित सुन्दर स्वच्छ निशीथ ;
जिसमें शीतल पवन गा रहा
पुलकित हो पावन उद्‌गीथ।'

'प्रसाद' जी की भाषा सरल, प्रवाहमयी और व्यापक है। मिठास उसका विशेष गुण है। शान्त प्रकृति, उषा, वसन्त और प्रेम के संगीत के लिए वह अधिक उपयुक्त है। प्रकृति का विकराल स्वरूप उसे अधिक पसन्द नहीं। 'मधु', 'मधुमय', 'मदिर', 'मधुर' आदि विशेषण आपको विशेष प्रिय हैं; 'स्वप्निल', 'धूमिल', 'फेनिल' आदि शब्दों का बाहुल्य है। गीति-काव्य में ऐसी मधुर भाषा खूब खपती है।

आपके शब्द-चित्र बड़े सुन्दर बनते हैं :

'खुली उसी रमणीय दृश्य में
अलस चेतना की आँखें ;
हृदय-कुसुम की खिलीं अचानक
मधु से वे भीगीं पाँखें।'

'किये मुख नीचा कमल समान
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छन्द।
भुज-लता पड़ी सरिताओं की
शैलों के गले सनाथ हुए।'

उपमाएँ आपकी अधिकतर प्रकृति से ली गई हैं, विशेषकर रात्रि से—

'नीरव निशीथ में लतिका-सी
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?'

आपकी भाषा ध्वनि-प्रधान भी है। यहाँ निरन्तर भ्रमर-गुंजार, पक्षियों का कलरव, लहरों का गान, झरनों का कलकल नाद सुन पड़ते हैं। यह सब मीठी और कोमल ध्वनियाँ हैं। जल-प्लावन और सिन्धु की हिलोर भयावह शब्द भी करती हैं; किन्तु 'प्रसाद' जी को उधर कुछ आकर्षण नहीं। आपके कान कहीं और ही लगे हैं :

'कंकण क्वणित, रणित नूपुर थे,
हिलते थे छाती पर हार;
'मुखरित था कलरव, गीतों में
स्वर-लय का होता अभिसार।'

प्रलय की तो आपने नीरवता देखी—

'दूर-दूर तक विस्तृत था हिम
स्तब्ध उसी के हृदय समान;
नीरवता-सी शिला चरण से
टकराता फिरता पवमान।'

वंशी की ध्वनि भी आपको पसन्द है—

'स्वर का मधु निस्वन रंध्रों में
जैसे कुछ दूर बजे बंसी।

अथवा

'वह ध्वनि चुपचाप हुई सहसा
जैसे मुरली चुप हो रहती।'

आपको सुरधनु-से चमकीले रंग बहुत प्रिय हैं—नीले, लाल, सुनहले। इन चटकीले रंगों के कारण आपके काव्य में आलोक-सा है—

'संध्या घनमाला की सुन्दर
ओढ़े रंग बिरंगी छींट,
गगन-चुंबिनी शैल-श्रेणियाँ
पहने हुए तुषार किरीट।'

किन्तु नीला रंग आपको बहुत ही प्रिय है। 'कामायिनी' के कुछ ही पन्नों में इसका आभास होगा। कहीं-कहीं तो एक ही पृष्ठ में कई बार इसका वर्णन है।

'ऊषा की सजल गुलाली जो
घुलती है नीले अम्बर में।

या

'माया के नीले अञ्चल में
आलोक बिन्दु-सा झरता है।'

इसी प्रकार असितकुमार हाल्दार को भी नीला रंग बहुत प्रिय है। 'प्रसाद'जी और भी कुछ कारणवश असित हाल्दार का स्मरण दिलाते हैं। दोनो ही उच्च वर्ग की संस्कृति के कलाकार हैं। यहाँ मधु और माधव की भरमार है। दोनो ही हमें उन मुग़ल कलाकारों का स्मरण दिलाते हैं, जिनके चित्रों में कोमलता और सुकुमारता के साथ-साथ विलास की

झलक भी थी।

'सुरा सुरभिमय बदन अरुण वे
नयन भरे आलस अनुराग।'

'प्रसाद'जी जीवन को कर्मक्षेत्र मानते हैं। प्रेम और श्रद्धा से जीवन सफल हो जाता है। ज्ञान और तप दोनो में ही नीरसता है। सेवा को आप तप से बढ़कर समझते हैं। तपस्वी के प्रति आप कहते हैं:

'एक तुम, यह विस्तृत भूखंड
प्रकृति वैभव से भरा अमंद;
कर्म का भोग, भोग का कर्म
यही जड़-चेतन का आनन्द!
अकेले तुम कैसे असहाय
यजन कर सकते तुच्छ विचार।
तपस्वी! आकर्षण से हीन
कर सके नहीं आत्म-विस्तार।'

× × ×

'समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पदतल में विगत विकार।'
'दया, माया, ममता, लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास;

हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।'

इड़ा का ज्ञानवाद जीवन की पहेली सुलझाने में असफल रहा। आगे चलकर 'प्रसाद'जी ने ज्ञान के शुष्क क्षेत्र का चित्र भी खींचा है:

'प्रियतम! यह तो ज्ञान-क्षेत्र है
सुख-दुःख से है उदासीनता;
यहाँ न्याय निर्मम, चलता है
बुद्धि-चक्र, जिसमें न दीनता।'

× × ×

'यहाँ प्राप्य मिलता है केवल
तृप्ति नहीं, कर भेद बाँटती;
बुद्धि, विभूति सकल सिकता-सी
प्यास लगी है ओस चाटती।'

'न्याय, तपस, ऐश्वर्य में पगे
ये प्राणी चमकीले लगते;
इस निदाघ मरु में, सूखे से
स्रोतों के तट जैसे जगते।'

'कामायनी' में जीवन का एक बड़ा मनोहारी चित्र है:

'वह देखो रागारुण जो है
ऊषा के कंदुक-सा सुन्दर;

छायामय कमनीय कलेवर
भावमयी प्रतिमा का मन्दिर ।'
'शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध की
पारदर्शिनी सुघड़ पुतलियाँ ;
चारों ओर नृत्य करती ज्यों
रूपवती रंगीन तितलियाँ ।'
'इस कुसुमाकर के कानन के
अरुण पराग पटल छाया में ;
इठलातीं, सोतीं, जगतीं ये
अपनी भाव भरी माया में ।'
'वह संगीतात्मक ध्वनि इनकी
कोमल अँगड़ाई है लेती ;
मादकता की लहर उठाकर
अपना अम्बर तर कर देती ।'

× × ×

'यह जीवन की मध्य भूमि है
रस-धारा से सिंचित होती ;
मधुर लालसा की लहरों से
यह प्रवाहिका स्पंदित होती ।'

माया के इस रंगीन जाल से निकलना कितना कठिन है, यह स्वयं कवि ने शायद अनुभव किया है !

पन्त की भाँति 'प्रसाद'जी भी कहते हैं कि जीवन सुख के ताने-बाने से बना है।

'अमृत-हलाहल यहाँ मिले हैं
सुख-दुख बँधते, एक डोर हैं।
...कैसे सुलझे उलझीं सुख-दुख की लड़ियाँ !'

किन्तु कवि का भावुक हृदय जीवन के दुःख से ही अधिक प्रभावित होता है। बार-बार कवि का हृदय दुःख-भार से हाहाकार कर उठता है। मनु के स्वर में स्वयं 'प्रसाद' का स्वर मिला है—

'जो कुछ हो, मैं न सम्हालूँगा
इस मधुर भार को जीवन के ;
आने दो कितनी आती हैं
बाधाएँ दम संयम बन के।'

अथवा

'आँसू से भींगे अंचल पर
मन का सब कुछ रखना होगा ;
तुमको अपनी स्थिति-रेखा से
वह संधि-पत्र लिखना होगा।'

मनुष्य कठोर कर्म-चक्र में फँसा है—

'कर्मचक्र-सा घूम रहा है
यह गोलक बन नियति प्रेरणा ;

सबके पीछे लगी हुई है
कोई व्याकुल नई एषणा।'
श्रममय कोलाहल, पीड़नमय
विकल प्रवर्तन महायंत्र का ;
क्षण-भर भी विश्राम नहीं है
प्राण दास है क्रिया-तंत्र का।'

'प्रसाद' जी की कविता में दुःखवाद है, किन्तु विद्रोह नहीं। इस कर्म-भार को आप सहर्ष सम्हाल लेते हैं—

'कर्म-यज्ञ से जीवन के
सपनों का स्वर्ग मिलेगा ;
इसी विपिन में मानस की
आशा का कुसुम खिलेगा।'

संसार के सभी बड़े कवि जीवन के दुःख से ही अधिक द्रवित हुए हैं। इस देश और युग की परिस्थितियाँ देखते हुए यह दुःखवाद और भी स्वाभाविक लगता है। यह 'प्रसाद'जी की महत्ता है कि इस पीड़ा के भार से दबकर वह विप्लववादी नहीं हो जाते।

'कामायनी' में उच्च काव्य के अनेक गुण हैं। इसमें रस, माधुरी, कल्पना, भावुकता, विचार-प्रौढ़ता सभी मिलेंगे। अनेक पंक्तियाँ स्मृति-पट पर अङ्कित हो जाती हैं :

'तारा बनकर यह बिखर रहा
क्यों स्वप्नों का उन्माद अरे !

उस विराट आलोड़न में, ग्रह
तारा बुद्बुद्-से लगते।'

जीवन की जटिलता, उसका आकर्षण, उसकी पीड़ा सबकी यहाँ झाँकी मिलेगी। साथ ही कवि की कल्पना रङ्गीन पंख लेकर बहुत ऊँची उठी है। हिन्दी-काव्य का इतिहास लिखते समय 'कामायनी' को बहुत ऊँचा स्थान देना होगा।

[२]

अनामिका

पन्तजी ने 'युग-वाणी' में 'अनामिका' के कवि की स्मरणीय छन्दों में स्तुति की है :

'छन्द बन्ध ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता-धारा
मुक्त, अबाध, अमंद, रजत निर्झर-सी निःसृत—'

इस श्रद्धाञ्जलि की हिन्दी के इस तेजस्वी कवि के प्रति आवश्यकता भी थी, जिससे उसका हृदय अकृतज्ञता के भार से क्षुब्ध न हो उठे।

पिछले वर्षों में कवि 'निराला' के मौनप्राय रहने से मन में यह आशंका हो रही थी कि कीट्स की भाँति कहीं उनकी प्रेरणा का दीपक भी आलोचकों ने न बुझा दिया हो! 'अनामिका' और 'तुलसीदास' के सर्वाङ्ग-सुन्दर दर्शन से हिन्दी-जनता को बहुत संतोष होगा।

'निराला' हमें अनायास ही ब्राउनिंग का स्मरण दिलाते हैं। कविता की वही अजस्र टेढ़ी-मेढ़ी धार, रूढ़ि के छन्दों की

उपेक्षा, काव्य के संगीत को जीवन के भग्न ताल से मिलाने का प्रयास।

'अनामिका' में अनेक नई-पुरानी कविताएँ हैं। सन् '२३ और '२४ से लगाकर '३८ तक के प्रयास। इन सबका हमारे ऊपर यह 'इम्प्रेशन' पड़ता है कि भावों की बाढ़ को कवि ने भरसक रोका है। उसकी कविता संयम और शासन-भार से दबी है। किन्तु कभी-कभी उसके सधे कण्ठ का स्वर भी उमड़ पड़ा है और रोके नहीं रुका।

'निराला' सर्वप्रथम 'टेकनीशियन' हैं। उनकी कविता से हमें अखंड किन्तु संयत और शासित शक्ति का भान होता है। 'निराला' ने हिन्दी में नये मुक्तक छंदों को सफलता-पूर्वक निबाहा है। स्वयं आपके शब्दों में—

वही तोड़ बन्धन
छन्दों का निरुपाय—
'अर्ध विकच इस हृदय-कमल में आ तू
प्रिये, छोड़कर बन्धनमय छन्दों की छोटी राह !'

आपकी भावना मानो प्रत्यञ्चा की भाँति कसी तनी रहती है। पन्तजी के कथनानुसार स्फटिक शिलाओं से इस शिल्पी ने कविता का प्रासाद गढ़ा है।

'निराला' जन-साधारण के कवि नहीं, यह हमें मानना पड़ता है। वह अंग्रेज़ी कथन के अनुसार 'कवियों के कवि' हैं। आपके काव्य का प्रधान गुण चिन्तन है। कल्पना विद्युत की भाँति बीच-बीच में चमक जाती है। मुक्तक छंदों में संगीत की ताल भग्न हो जाती है, यद्यपि उसकी अपनी तरंग-मालाएँ उमड़ा

करती हैं। कथा के प्रवाह में मुक्तक-छन्द-संगीत और भी स्वतंत्र हो जाता है। 'सेवा-प्रारम्भ' में हम कभी-कभी भूल जाते हैं कि यह कविता है :

'स्वामी जी घाट पर गये,
'कल जहाज छूटेगा' सुनकर
फिर रुक नहीं सके,
जहाँ तक करें पैदल पार—
गंगा के तीर से चले।...'

'राम की शक्ति-पूजा' अपने शब्दाडंबर से 'प्रिय-प्रवास' का स्मरण दिलाती है।

'निराला' हिन्दी काव्य में क्रान्तिकारी शक्ति हैं। आप हमारे भविष्य की ओर इंगित करते हैं। आपने जो कला में अन्वेषण किये हैं, उनके बल पर भविष्य का काव्य बनेगा। टेकनीक में ही नहीं, विचार-विन्यास में भी 'निराला' क्रान्ति के वाहक हैं :

'तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर की, निकलो फिर,
गंगा-जल-धारा !'

अधिकतर 'निराला' के विषय कविता और छन्दों के प्रति हैं, किन्तु मनुष्य के कठोर जीवन और प्रकृति-बाला के रूप का आभास भी हमें निरन्तर आपकी कृति में मिलता है। आधुनिक हिन्दी काव्य का चिर प्रिय सखा दुखवाद भी हमें यहीं मिलता है :

'रोग स्वास्थ्य में, सुख में दुख, है अन्धकार में जहाँ प्रकाश,
शिशु के प्राणों का साक्षी रोदन जहाँ वहाँ क्या आश
सुख की करते हो तुम, मतिमन् ?'

कवि की पीड़ा का आधार ठोस जीवन है, यह दुःख-विलास मात्र नहीं। कवि ने इस विडम्बना से मुक्ति का संदेश भी सुनाया है :

'या निष्ठुर पीड़न से तुम नव जीवन
भर देते हो, बरसाते हैं तब घन !'

आपके नेत्र अतीत की ओर नहीं, भविष्य की ओर लगे हैं। 'अनामिका' में अनेक प्रगतिशील कविताएँ हैं। 'दान', 'उद्बोधन', 'तोड़ती पत्थर', 'सहज' आदि।

यह भारतीय जन-समाज के कठोर जीवन की निर्मम झाँकी हमको देती हैं। इन कविताओं में जीवन का दारुण सत्य है, साथ-साथ आशा का संदेश भी।

'ताल-ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय-कपाट,
खोल दे कर-कर कठिन प्रहार—'
'पुनर्वार गाएँ नूतन स्वर, नव कर से दे ताल,
चतुर्दिक छा जाए विश्वास।'

मनुष्य को आपने अविकल समता का राग सुनाया है :

'मानव मानव से नहीं भिन्न,
निश्चय, हो श्वेत, कृष्ण अथवा,

वह नहीं क्लिन्त ;
भेद कर पंक
निकलता कमल जो मानव का
वह निष्कलंक,
हो कोई सर—'

'अनामिका' में हमें प्रकृति का अभिनव दर्शन भी मिलता है। रूप-माधुरी हमें 'निराला' जी के काव्य में मिलती है, किन्तु आप उसके स्वामी हैं, दास नहीं। आपके कण्ठ में मीठे गीत उमड़ते हैं, किन्तु आपको उनके प्रति कोई विशेष मोह नहीं :

'वे किसान की नई बहू की आँखें
ज्यों हरीतिमा में बैठे दो विहग बन्द कर पाँखें।'।

अथवा, आप सान्ध्य-वधू का चित्र खींचते हैं :

'बीत चुका शीत, दिन वैभव का दीर्घतर
डूब चुका पश्चिम में, तारक-प्रदीप-कर
स्निग्ध-शान्त दृष्टि सन्ध्या चली गई मन्द-मन्द
प्रिय की समाधि ओर, हो गया है रव बन्द
विहगों का नीड़ों पर, केवल गंगा का स्वर
सत्य ज्यों शाश्वत सुन पड़ता है स्पष्टतर—'

किन्तु शक्ति के इस उपासक कवि को अपनी रुचि का विषय ज्वालामय 'ज्येष्ठ' में मिलता है।

'घोर-जटा-पिंगल मंगल देव ! योगि-जन-सिद्ध !
धूलि-धूसरित, सदा निष्काम !'

प्रकृति का यह तेजस्वी रूप आपको आकर्षित करता है :—

'उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई भू—'

मिठास आज हिन्दी कविता में बहुत है। बहुत ज्यादा मिठास स्वास्थ्यप्रद भी नहीं होती। 'निराला' के काव्य में पच्चीकारी यथेष्ट मात्रा में है :

'गोमती क्षीण-कटि नटी नवल,
नृत्य पर मधुर-आवेश-चपल।'

किन्तु केवल पच्चीकारी में ही उलझकर आप नहीं रह जाते।

आप अपनी कमजोरियाँ जानते हैं :

'शुष्क हूँ—नीरस हूँ—उच्छृंखल—'
'वहाँ एक यह लेकर वीणा दीन
तन्त्री क्षीण—नहीं जिसमें कोई झंकार नवीन,
रुद्ध कंठ का राग अधूरा कैसे तुझे सुनाऊँ?'

किन्तु आप अपनी शक्ति भी जानते हैं। कविता-प्रेयसी से आप कहते हैं :

'अगर कभी देगी तू मुझको कविता का उपहार
तो मैं भी तुझे सुनाऊँगा भैरव के पद दो-चार!'
'तेरे सहज रूप से रँग कर
झरे गान के मेरे निर्झर,

भरे अखिल सर,
स्वर से मेरे सिक्त हुआ संसार !'

हमें हर्ष है कि हिन्दी के इस तरुण तपस्वी कवि को अपनी शक्तियों पर इतना अधिकार है और इतना आत्म-विश्वास उसके मन में है। उसकी प्रतिभा के इस मध्याह्न से हिन्दी कविता फले-फूलेगी।

[३]

युगवाणी

'युगवाणी' कवि पन्त के साहित्यिक जीवन में एक पुराने युग के अन्त और नये के आविर्भाव की सूचना है। 'युगवाणी' से पूर्व की रचना का नाम 'युगान्त' इसी दृष्टि से सार्थक है। स्वयं 'युगान्त' में युग के अन्त की कोई सूचना प्रकाश रूप न थी। केवल 'बापू के प्रति' कविता कवि के बदलते दृष्टिकोण की परिचायिका थी। कवि की प्रेरणा 'युगान्त' में सजग दीपशिखा-सी प्रज्वलित है, किन्तु अन्तिम कविता 'बापू' में वह प्रकृति के अभिनव रूप-विलास को तज मानवी समस्याओं की ओर झुक रही है।

'युगवाणी' की कवितायें नवीन दिशा में एक प्रयास हैं। 'युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न' और 'गीत-गद्य' इन शब्दों में निरहंकारी कवि ने अपनी पुस्तक का परिचय दिया है। 'युगवाणी' की कविता उत्तप्त भावना-रहित हिम-सी शीतल ठंडी हैं। इसका कारण है कवि का संयमशील बुद्धिवादी दृष्टिकोण। यह कोई नई बात नहीं। पन्त सदा से कल्पनाशील चिन्तन-प्रधान कवि रहे हैं। भावना की अपेक्षा कल्पना-विलास ही

उनका प्रधान गुण रहा है। कल्पना के रेशमी तानों-बानों से ही 'पल्लव' और 'युगान्त' के रंगीन पट बुने गये हैं। 'पल्लव' के पन्त के लिए 'नवीन' ने कहा था : 'शैली' की आग पन्त में कहाँ ?' यद्यपि 'पल्लव' में पन्त की तरल लावा-सी कविता 'परिवर्तन' भी है। 'युगवाणी' में पन्त की कल्पना ने वैराग्य ले लिया है और उनके संगीत की गति धीर-गंभीर है; चिन्तन और मनन का यह आधिपत्य उनके और किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता।

कवि का यह तापस-रूप गृही-विलासी पाठकों को नहीं रुचा। किन्तु 'युगवाणी' एक प्रयोग है। कवि अपनी पुरानी लीक त्याग नया पथ खोज रहा है। हमें पूरी आशा है कि नवीन शक्ति और ओज से कवि का स्वर फिर गूँजेगा और अभी भविष्य उसके साथ है।

'युगवाणी' के विरुद्ध एक आरोप यह है कि अमर साहित्य 'युगवाणी' न होकर 'युग-युग की वाणी' होता है। किन्तु जीवित में युग की प्रतिध्वनि सतत् रहती है। कालिदास और शेक्सपियर के युग का पुनर्निर्माण हम उनके काव्य की सहायता से कहते हैं। प्रश्न यह है कवि जीवन के 'चैलेंज' को स्वीकार करता है या उससे बच कर भागता है। युग की प्रतिध्वनि तो काव्य में मिलेगी ही। भावना, कल्पना और चिन्तन गुण यदि काव्य में हैं, तभी वह अमर होगा।

'युगवाणी' की कमजोरी यह है कि कवि ने दर्शन अपना विषय बनाया है और यह विषय कविता की गति में अवरोध पैदा करता है। जहाँ कवि ने जीवन का कोई लघु अंग अपना कर उस पर अपने दृष्टिकोण से प्रकाश डाला है, वहाँ उसकी रचना चमक उठी है। 'युगवाणी' में अनेक उच्च श्रेणी की

कविताएँ हैं। 'चींटी', 'शिल्पी', 'दो लड़के', 'मानव-मन', 'गंगा की साँझ', 'झंझा में नीम' आदि, जिनकी महत्ता रूढ़ि के आलोचक भी मानते हैं। किन्तु इन कविताओं का रूढ़ि-युक्त संगीत, इनकी रूप-रेखा और चित्र-भाषा एक नवीन दृष्टिकोण और दृष्टि-दान का फल है।

आरम्भ में ही कवि कहता है :

'खुल गये छन्द के बन्ध,
प्राश के रजत पाश,
अब गीत मुक्त,
औ' युगवाणी बहती अयास !'

'अनामिका' के कवि के प्रति पुष्पांजलि में यही बात दुहराई गई है :

छन्द बन्ध ध्रुव तोड़ फोड़कर पर्वत कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमंद रजत निर्झर-सी निःसृत,—'

इन पंक्तियों में स्वयं एक उद्दाम वेग, गति और शक्ति भरी है।

यह नवीन गति-प्रवाह और संगीत हमें 'युगवाणी' में सर्वत्र मिलते हैं :

'सर् सर् मर् मर्
रेशम के से स्वर भर,
घने नीम दल
लंबे, पतले, चंचल

श्वसन-स्पर्श से
रोमहर्ष से
हिल-हिल उठते प्रति पल !'

'युग-वाणी' के शब्द-चित्र भी कोमल ब्रश से नहीं बने। यह चित्र यथार्थ, सच्चे और मार्मिक हैं। कवि कहता है :

'आओ, मेरे स्वर में गाओ।
जीवन के कर्कश अपस्वर !
मेरी वंशी में लय बन जाओ।'

'जीवन के कर्कश अपस्वर' 'युगवाणी' में निरन्तर प्रतिध्वनित हैं :

'सिगरेट के खाली डिब्बे, पन्नी चमकीली,
फ़ीतों के टुकड़े, तस्वीरें नीली पीली—'

अथवा—

'पीले पत्ते, टूटी टहनी,
छिलके, कंकर, पत्थर
कूड़ा करकट सब कुछ भू पर
लगता सार्थक सुन्दर।'

कवि जगत की रूप-माधुरी और विलास से सचेतन मुख मोड़ रहा है और विश्व की विराट् कुरूपता को अपना रहा है। इसी प्रकार अंग्रेजी के कवि मेसफील्ड ने कहा है कि विश्व में सभी टूटी-फूटी, दुर्बल-असक्त, रूपहीन वस्तुएँ उसके गीत का ध्येय बनें !

'युगवाणी' की पृष्ठ-भूमि में साम्यबाद का विशाल पट है।

'मार्क्स के प्रति', 'भूत दर्शन', 'साम्राज्यवाद', 'समाजवाद-गान्धीवाद' आदि कविताएँ गम्भीर मनन और चिन्तन का फल हैं। भविष्य के समाज में यह 'टेक्स्ट-बुकों' में शायद रखी जावें। किन्तु आज का शिक्षित हिन्दी-समाज इन कविताओं को ग्रहण करने में असमर्थ है। बच्चन ने इन्हें सुनकर पन्तजी से कहा था कि उनके सिर में दर्द हो गया। पन्तजी आज कविता-पाठकों के हृदय में दर्द न पहुँचा सर में दर्द कर रहे हैं।

जो पाठक साम्यवाद समझते हैं, उन्हें इन कविताओं में अनन्य रस मिलेगा। इस दिव्य दृष्टि से हीन पाठक इन 'कर्कश अपस्वरों' की अवहेला करेंगे।

'मार्क्स के प्रति' पन्त जी कहते हैं :

> 'दंतकथा, वीरों की गाथा, सत्य, नहीं इतिहास,
> सम्राटों की विजय-लालसा, ललना भृकुटि-विलास;
> दैव नियति का निर्मम क्रीड़ा-चक्र न वह उच्छृंखल,
> धर्मान्धता, नीति संस्कृति का ही केवल समरस्थल।'

मनुष्य का इतिहास वीर पुरुष, सुन्दर स्त्री, नियति का चक्र नहीं चलाते ; वह चलता है वर्ग और संस्कारों के संघर्ष से। यह पाठ मार्क्स ने संसार को पढ़ाया और दलित वर्गों को विजय का संदेश सुनाकर उन्हे प्राण-दान दिया।

पन्त का काव्य आज इस संदेश को लेकर बढ़ रहा है। हमारे सामूहिक जीवन की आशाओं का वह अगुआ बना है। मधुर वीणा की कोमल तान न पाकर विलासी पाठक असंतुष्ट और असहिष्णु हो उठेंगे, किन्तु समर-भूमि की ओर बढ़ती सेनाएँ इस रण-भेरी की पुकार से उत्फुल्ल होंगी।

कुंकुम

भारतेन्दु के समय से ही जो हिन्दी कविता में देशभक्ति का श्रोत उमड़ा है, 'नवीन' उसके सहज और स्वाभाविक अंग हैं। ब्रिटिश सत्ता के फलस्वरूप हिन्दी के काव्य में यह नये अंकुर उगे। 'भारत-दुर्दशा', 'भारत-भारती', 'कुंकुम', 'हुंकार', 'युग-वाणी' इस प्रगति के पद-चिन्ह हैं।

यद्यपि 'नवीन' का संग्रह अब वर्षों की प्रतीक्षा के बाद प्रकाशित हुआ है। आपकी कविता और स्वयं आप हिन्दी-ससार में काफी लोकप्रिय रहे हैं। आप भारतीय साहित्य की उन इनी-गिनी विभूतियों में हैं, जो राष्ट्रीय जीवन में भी गले तक लिप्त हैं। सर्वश्री मुन्शी, 'एक भारतीय आत्मा', भिक्षु राहुल सांस्कृत्यायन, बेनीपुरी इसी श्रेणी में आते हैं।

'कुंकुम' की जिस अधीरता से प्रतीक्षा की थी, उसके बाद इसे पढ़ कर कुछ निराशा भी होती है। 'नवीन' की अनेक प्रसिद्ध कविताएँ इस संग्रह से नदारद हैं। 'मानव', 'गुरुदेव गांधी', 'विजया-दशमी', 'झूठे पत्ते', 'ढुल मुल'। दूसरी बात यह भी है कि 'नवीन' के काव्य का पूरा आनन्द उसे उन्हीं के मुख से सुन कर मिलता है। उस उष्ण रक्त और ओज-भरे स्वर का बल छापे के ठंडेपन में कहाँ ?

'नवीन' के वक्तव्य से हमें कुछ आश्चर्य हुआ। स्वभाव से आप प्रगतिवादी हैं, किन्तु सिद्धान्त से नहीं। नरेन्द्र इसके ठीक विपरीत हैं—सिद्धांत में प्रगतिवादी, किन्तु स्वभावतयः कोरे गायक। आधुनिक हिन्दी-काव्य की आत्मा बूझने के लिए इन दो वक्तव्यों को पढ़ना जरूरी है—'कुंकुम' और 'प्रवासी के

गीत' की भूमिकाएँ यह हमारी प्रगति के दो छोर और दृष्टिकोण हैं।

स्वयं 'नवीन' अपने काव्य का उपयुक्त परिचय देते हैं; 'बाज़ औकात कुछ धुवाँ-सा मन में मँडराने लगता है और कहने की ख्वाहिश हो उठती है।' यही 'धुवाँ' तो कवि की प्रेरणा है। 'नवीन' भावना-प्रधान कवि हैं। आपकी कविता पढ़ कर हमें अवश्य यह भास होता है कि 'यह सवा हाथ का कलेजा है जो तड़प रहा है।' 'नवीन' उद्दाम अखंड यौवन के कवि हैं। स्वाधीनता-प्रेम और प्रणय-भावना इस उद्यम यौवन की द्विमुख प्रेरणा है।

'कुंकुम' की पहली कविता स्वर्गीय गणेशजी के जेल-जाते समय लिखी गई थी। उचित आसन पर ही यह कविता आरूढ़ है। आपकी कविता 'विप्लव-गायन' प्रसिद्ध है :

'कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ,
जिससे उथल-पुथल मच जाये।'

प्रगतिवाद की इतनी शक्तिपूर्ण आवाज कम ही सुनाई पड़ती है। अनन्य वेग और जीवनी-शक्ति इस काव्य में है :

'झाड़ और झंखाड़ दग्ध हैं
इस ज्वलन्त गायन के स्वर से,
रुद्ध गीत की क्रुद्ध तान है
निकली मेरे अन्तरतर से।'

पहली पराजय के बाद लिखा आपका 'पराजय-गीत' मुझे बहुत प्रिय है। इसका एक कारण शायद यह है कि 'नवीन' के मुख से ही मैंने उसे पहले सुना और इसे सुनाते-सुनाते आप

बहुत विचलित और क्षुब्ध हो उठे थे ; आपका कण्ठ-स्वर और शरीर तक रौद्र-रूप धर कुपित-कुण्ठित हो उठा था। स्वयं 'नवीन' का जीवन ही एक प्रगति-शील कविता है।

'ढुलमुल' के प्रकाशन पर चाय के प्याले में एक तूफान उठ खड़ा हुआ था। अन्धे आलोचक कहने लगे यह 'नवीन' संन्यासी क्या अधेड़पन में प्रणयी बनने चला है? किन्तु 'नवीन' कभी अधेड़ नहीं होगा। उसके कान पर बालों में सफेदी आ चली है, किन्तु उसका रक्त उष्ण है और यदि पहिले उसका कलेजा सवा हाथ का था, तो आज दो हाथ का है। 'नवीन' से अधिक सच्चा कवि आज कोई नहीं। 'नवीन' का अखंड यौवन उसे प्रणय की ओर बुलाता है, तब क्या वह संकोचवश चुप रहेगा?

'इस यौवन-गाथा के 'अथ' में—
बाल्य काल के 'इति' के पथ में—
आँखें सदा रहीं प्यासी ये
दर्शन भर की अभिलाषी ये,
अब बंदिनी बनी हैं, खिंचती है तेरे आँगन की ओर—
जहाँ खिसकता है, ढुलता है, प्रतिमे, तव अञ्चल का छोर।

इस प्रणय की उमङ्ग में 'नवीन' की भावना और कल्पना अतिरंजित हो उठी है और उसकी कविता धरातल से उठ कर आकाश-गामिनी बनी है :

'आज नींद के श्यामल घर में,
मूर्छा के उस अंतर-तर में,

मृदुल किरण-सी, नव-चेतन-सी
सहसा तुम आईं कम्पन-सी'
गूँथ दिया वह जाल मनोहर, ले कम्पित भावों की डोर,
क्षण भर को चूमा (सपने में) प्रतिमे, तव अञ्चल का छोर ।'

'नवीन' के काव्य में निराशा की झलक भी आ गई है, किन्तु यह निराशा अव्यक्त, मूक, छायावादी नहीं हैं, यह जीवित व्यक्ति की निराशा है, मृतक की नहीं :

'अरो, सुलगजा, खूब सुलगजा
ओ ! विषाद की ज्वाला
धुआँ न उठे, दिखाई दे लौ—
का ताण्डव मतवाला ।'

हिन्दी-संसार की एक परम क्रान्तिकारी शक्ति 'नवीन' हैं। हमारी आगे बढ़ने की आतुरता को आप मूर्त्तिमान् करते हैं :

'एक हाथ में लिये निरी टूटी-
सी कलम, हृदय की भ्रान्ति,
और दूसरा हाथ दिखाता
वह पथ, जहाँ आकुला क्रान्ति ।'

लेकिन आपकी कलम टूटी कभी नहीं है। आप पहिले से कुछ बढ़ कर ही कविता आज लिख रहे हैं। हम आपके कृतज्ञ हैं कि कविता द्वारा अपने जीवन और अनुभव में आपने हमें साझी बनाया है।

●

गोदान

साहित्यिक प्रेमचन्द का कोई क्रमबद्ध विकास न हुआ। 'सेवासदन' और 'सप्त-सरोज' की सफलता वह बहुत दिन तक न दुहरा सके। प्रेमचन्दजी शायद बेहद भावुक थे। एक बार जिस धार में पड़े, वह बहा ले गई। उनकी कला का उनके ऊपर कठोर शासन कभी न हुआ। परस्पर क्रीड़ा-सी ही होती रही। 'प्रेमाश्रम' भी सजीव कृति थी, यद्यपि कला के ऊपर सिद्धान्त का अधिक आधिपत्य था। 'गोदान' 'प्रेमाश्रम' की और भी याद दिला रहा है। दोनो के वातावरण में कुछ सामान्यता अवश्य है। ग्राम्यजगत, दुखी, दारिद्र्य-पूर्ण-उदार मध्य-वर्ग की ओर आशा-भरे नेत्र उठाये। केवल 'गोदान' में बागडोर कला के हाथ में हैं। 'रंग-भूमि' में प्रेमचन्द ने अपनी सामर्थ्य से बाहर कार्य उठाया। सभी उन्नतिशील कलाकार एक बार ऐसा बीड़ा उठाते हैं। Aldous Huxley का 'Point counter-point' ऐसा ही विफल प्रयास है। संपूर्ण जीवन की गुत्थियाँ कोई एक उपन्यास में कैसे सुलझा दे? यदि इस प्रयास में प्रेमचन्द सफल हो जाते, तो विश्व-साहित्य के अमर कलाकारों में उनका नाम अवश्य होता। 'कायाकल्प' में प्रेमचन्द की कला ने अधोगति की नीची सीढ़ी छुई—यद्यपि इसके भी कुछ भागों में वही रस और सजीवता है। फिर प्रेमचन्द उठते ही गये। 'निर्मला', 'ग़बन'—और अब 'गोदान'। 'कायाकल्प' के बाद उन्होंने फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा।

'गो-दान' का स्थान प्रेमचन्द की कृतियों में बहुत ऊँचा होगा। अभी हम उसके इतने समीप हैं कि जितनी निष्पक्ष समालोचना उनकी होनी चाहिये, हो नहीं सकती। बड़े विशेषणों से उन्हें लादने से उनकी कुछ सेवा न होगी। काल निर्दय समालोचक है। वह दूध का दूध और पानी का पानी कर देता है।

'गो-दान' लिखने में प्रेमचन्द की कला पूर्ण रूप से जाग्रत थी। घटनाओं पर, मानव-चरित्र पर वही अटल अधिकार। भाषा में कुछ और भी रस और कविता का आभास आ गया है। ग्राम्य-जीवन के प्रति कुछ अधिक उल्लास दीखा। जैसे हिन्दी की नवीन काव्य-धारा में कुछ वे भी रँग गये हों!

'फागुन अपनी झोली में नव-जीवन की विभूति लेकर आ पहुँचा था। आम के पेड़ दोनो हाथों से बौर की सुगन्ध बाँट रहे थे, और कोयल आम की डालियों में छिपी हुई संगीत का गुप्त दान कर रही थी।' (पृष्ठ ३४८)

और

'महुए की डालियों पर मैनों की बरात-सी लगी बैठी थी। नीम और सिरस और करौंदे अपनी महक में नशा-सा घोले देते थे।' (पृष्ठ ४०६)

जीवन के हेमन्त में इस वृद्ध साहित्य-सेवी के हृदय में वसन्त का यह गान कहाँ से फूट निकला?

'गो-दान' ग्रामीण-जीवन का चित्र है। प्रेमचन्द आरम्भ से ही ग्रामीणों के कलाकार रहे हैं। अपने जीवन तक को उन्होंने ग्रामीणता में रँग डाला था। भारत के ग्राम ही देश की प्राचीन विभूति हैं। यहाँ हमारे प्राचीन आदर्श और संस्कृति सुरक्षित हैं। किन्तु यहाँ कितनी निर्धनता, दुःख और पीड़ा है।

प्रेमचन्दजी के दृष्टि-कोण पर महात्मा गाँधी का विशेष प्रभाव पड़ा है। कनु देसाई और प्रेमचन्द ने पिछले आन्दोलन का वास्तविक रूप कला में अमर किया है।

नगर में विलास है, श्री है, पाप है—ग्राम में सरलता है, महत्ता है, दुख है। गाँधी की भाँति प्रेमचन्द ग्राम की ओर मुख मोड़े भारत के प्राचीन आदर्शों की रक्षा कर रहे हैं।

पीठ पीछे समय, सभ्यता, समाज अपनी अविरल तीव्र गति से निकले जा रहे हैं।

शरत् बाबू ने भी अपने 'पल्ली समाज' में ग्रामीण-जीवन का दिग्दर्शन कराया है। उनका निष्कर्ष कुछ और ही है। ग्रामों में अनाचार, पाप, क्रूरता, कुटिलता, धूर्त्तता भरी पड़ी है। यदि इस मृतक-समाज का शीघ्र ही शवदाह न हुआ, तो इसके विष से चारों ओर ही काल के कीटाणु फैल जायँगे।

शरद् बाबू ने विशेष करके मध्यम श्रेणी के मनुष्यों का वर्णन किया है। प्रेमचन्द छोटी जातियों के कवि और शिल्पी हैं। चरित्र-चित्रण में प्रेमचन्द कुशल हैं, किन्तु शरद् बाबू के पात्र बढ़कर आकाश तक पहुँचते-से लगते हैं। 'गो-दान' में उस जोड़ का केवल 'होरी' है।

ग्राम-जीवन के 'गो-दान' में अनेक सुन्दर चित्र हैं। (पृष्ठ ४६६। ५०७।) उपन्यास का आरम्भ ही एक ऐसे चित्र से हुआ है। होरी और भोला दोनो ही स्वभाव के सीधे हैं। किन्तु दोनो ही एक दूसरे से पराजित होते हैं। पहला परिच्छेद तो एक सुन्दर गल्प है। ग्रामीणों के झगड़े भी खूब होते हैं। (पृष्ठ ६६) छोटे कर्मचारी किस प्रकार ग्राम का शासन करते हैं, इसके अगणित उदाहरण हैं।

किन्तु प्रेमचन्द का विशेष गुण है ग्रामीणों की मनोवृत्ति की

अचूक समझ। भविष्य में शायद भारतीय ग्रामों का इतिहास इनके उपन्यास और कहानियों से ही पढ़ा जाय।

(२)

पाश्चात्य देशों के उपन्यासकार सफल कहानी लेखक नहीं होते। 'प्लॉट' पर उनका कुछ अधिकार ही नहीं होता। Dickens, Scott, Victor Hugo, Balzac तक इस विषय में दोषी हैं। उनके उपन्यासों का गौरव उनके पात्र होते हैं।

किन्तु कहानी का जन्म पूर्व में ही हुआ। अलिफलैला, पंचतन्त्र, हितोपदेश, कथासरित्-सागर।

रवि बाबू और शरद् बाबू दोनों ही चतुर कहानी लेखक हैं। प्लॉट सहज ही ग्रीष्म की नदी की भाँति अविरल धारा से बहता है।

इसी प्रकार प्रेमचन्द भी कथा के अवयवों को किसी चीनी पहेली की भाँति उलझा-सुलझा सकते हैं।

'गो-दान' में भी कथा का स्रोत अविरल है। किसी भी एक घटना में पड़कर प्रेमचन्द खो-से जाते हैं। फिर बहुत दूर जाकर कथा का पहला छोर स्मरण कर उठाते हैं।

कभी-कभी भूल भी कर बैठते हैं। 'मिल' जल जाने पर खन्ना तबाह हो गये, यह भूल कर प्रेमचन्द लिख जाते हैं कि 'मिल' (पृष्ठ ५४०) में अब भी खन्ना की ही चलती है (पृष्ठ ५१४)। एक बार लिखा है कि सिलिया का बालक दो वर्ष का हो रहा है—सारे ग्राम में दौड़ लगाता है (पृष्ठ ५७६)। चार पृष्ठ बाद ही लिखा कि वह कुछ-कुछ बैठने लगा था (पृष्ठ ५८३)।

किन्तु ऐसी भूलों का कुछ मूल्य नहीं। शेक्सपियर के नाटक अनेक भूलों से भरे पड़े हैं।

कथा के ऊपर प्रेमचन्द का पूरा अधिकार है। कभी ग्राम में, कभी नगर में; बड़े-बड़े रईसों में, दीन-दुखियों में उनकी कल्पना स्वच्छंद चक्कर लगाती है।

'गो-दान' की कथा का क्या यही अन्त है ? होरी की जीवन-लीला का अवश्य यह अन्त है। किन्तु यहीं क्यों, और आगे क्यों नहीं ? अभी तो उनकी कल्पना सजीव थी। क्या मृत्यु का संदेश पाकर स्वयं उनकी शक्तियाँ ढीली पड़ने लगी थीं ? इसी प्रकार Galsworthy ने अपनी मृत्यु के पहले 'Over the River' लिखा था। Chesterton ने लिखा है कि Pickwick Papers के किसी ने कुछ पृष्ठ फाड़ लिये हैं—ऐसा बालकपन में उनका विश्वास था ! अब भी वे उन पृष्ठों को ढूँढ़ रहे हैं। क्या 'गो-दान' के पृष्ठ भी काल ने फाड लिये ? अब भी किसी कल्पना के जग में मेहता, मालती, गोबर, सिलिया आदि क्रीड़ा कर रहे होंगे।

Galsworthy ने एक बार Oxford में अपना वक्तव्य देते हुए बताया था कि किस प्रकार उनकी कथा आगे बढ़ती है। वे एक आराम कुर्सी पर काग़ज़ लेकर बैठते हैं। मुख में 'पाइप' रखते हैं। फिर उनकी कल्पना जाग्रत हो उठती है। उनका व्यक्तित्व पात्र में खो जाता है। वह सोचते हैं, अब Soames उठता होगा...।

यही शायद प्रेमचन्द की कल्पना की भी गति है। होरी के विचारों में वे तन्मय-से हो जाते हैं। (पृष्ठ ५४) गोबर के मन में सावन के बादलों की भाँति विचार उमड़ पड़ते हैं। (पृष्ठ ३७८)

इस शैली को अब Stream of Consciousness कहने लगे हैं। पाश्चात्य उपन्यास-कला में यह कथानक, पात्र आदि सबको ले डूबी है। इसके आचार्य Freud आदि हैं।

मनोविज्ञान के प्रेमचन्द भी कुशल आचार्य हैं। इस प्रकार की टेकनीक में अच्छे कलाकारों से प्रेमचन्द की तुलना हो सकती है।

(३)

'गो-दान' एक प्रकार से 'होरी' की जीवन-कथा है। उसकी मृत्यु होते ही इस मंच पर पटाक्षेप हो गया। कथानक तक उसी के चारों ओर लिपटा है—जैसे रेशम के कीड़े के चतुर्दिक् रेशम।

'होरी' का स्थान भारतीय साहित्य में ऊँचा होना चाहिये। वह जीता-जागता व्यक्ति है। उसके विषय में प्रेमचन्द कह सकते हैं कि 'होरी' पर उनका कुछ वश नहीं ; वे स्वयं उसके वश में हैं।

प्रेमचन्द के पात्र रक्त-मांस के व्यक्ति होते हैं, कठपुतली नहीं। Tasso ने कहा है कि ईश्वर के अतिरिक्त कवि ही विधाता है।

प्रेमचन्द के पात्र प्रगतिशील (Dynamic) होते हैं ; स्थिर (Static) नहीं। मालती, मातादीन, खन्ना। 'बड़े घर की बेटी' लिखते समय जो उनकी रचना में चमत्कार था, वह अभी तक बना था।

शायद मध्य-वर्ग और उच्च-वर्ग के पात्रों में प्रेमचन्द उतनी सफलता न पा सके। इनको हम विलासी और अकर्मण्य ही पाते हैं। स्त्री का मन भी सदैव प्रेमचन्द नहीं समझ सकते। प्रेम के दृश्य तो उनके असफल-से हैं। किन्तु नीच ग्रामीण का हृदय भारत में गाँधी को छोड़कर प्रेमचन्द के बराबर कौन समझ सका है ? होरी, भोला, गोबर, धनिया, सिलिया !

होरी में अनेक अवगुण हैं। भारतीय किसान की स्वार्थपरता, रसिकता, धनलिप्सा। अपने भाइयों को धोखा देकर वह बाँस के रुपए खा जाना चाहता है ; किन्तु स्वयं धोखा खाता है। यदि

प्रेमचन्द उसे आदर्श और अवगुण-रहित बना देते तो होरी का कला की दृष्टि से इतना महत्व न होता। ऐसे जीव पृथ्वी पर नहीं-से होते।

पहले परिच्छेद में ही वह भोला को ठगना चाहता है; किन्तु उसकी उदारता उसके स्वार्थ पर विजय पा लेती है।

जितने त्याग से यह ग्रामीण दम्पति झुनिया, सिलिया और पुनिया का निर्वाह करते हैं, वह बड़ों-बड़ों के आदर्श-स्वरूप है।

होरी रसिक भी है, भावुक भी है। सहुआइन से भी छेड़-छाड़ कर लेता है। गाय के लिए कितना व्याकुल हो जाता है। ग्राम्य-जग में वसन्त-श्री देखकर गुनगुना उठता है—

हिया जरत रहत दिन-रैन।

आम की डरिया कोयल बोले तनिक न आवत चैन॥'

Gray's Elegy का स्मरण हो आता है कि यही व्यक्ति समाज का सहारा पा क्या हो सकते थे! अब तो जीवन की 'हल्दीघाटी' में उन्होंने सब कुछ खोकर अपनी मान-मर्यादा, और उदारता बचा ली, यही उनकी भारी विजय है।

दातादीन, नोखेराम, पटेश्वरी, झिंगुरी आदि गृद्ध की भाँति इस कृषक-समाज के शव को चारों ओर से नोचे खाते हैं।

मातादीन का चरित्र कला की दृष्टि से सुन्दर है। यह निर्मम, कठोर, स्वार्थी, लोलुप युवक धीमे-धीमे बदलकर सिलिया का तप सफल कर देता है।

गोबर अल्हड़, सीधा—नगर के प्रकाश से आकर्षित होकर उधर दौड़ता है; किन्तु हाथ कुछ भी नहीं लगता।

ग्राम की स्त्री-समाज के कुछ अच्छे चित्र उतरे हैं। धनिया,

झुनिया, सिलिया। बादाम की भाँति धनिया ऊपर से कठोर, पर हृदय की कोमल। झुनिया, समाज की दुर्व्यवस्थाओं का शिकार। सिलिया जाति की चमार होने पर भी आदर्श सती।

यह ग्राम की स्त्रियाँ लड़ती भी खूब हैं। धनिया और पुनिया का महासमर। फिर धनिया और झुनिया का। जब रण-चण्डी हुङ्कार कर उत्तेजित होती है, तो दरोगाजी तक के देवता भागते हैं।

किन्तु प्रेमचन्द के पात्रों के नाम कैसे विचित्र हैं! धनिया, पुनिया, गोबर!

जिस प्रकार झुनिया गोबर से और मालती मेहता से प्रेम (पृ० ७२) की बात करती हैं, वह अस्वाभाविक-सी (पृ० १३०) लगती हैं। किसी भी देश और समाज में स्त्री इस प्रकार अपना संकोच नहीं त्यागती।

मध्यम वर्ग से प्रेमचन्द की कुछ सहानुभूति नहीं। यहाँ उन्हें खन्ना, तंखा और राय साहब ही अधिक मिलते हैं। मिर्जा खुर्शेद कम। केवल खुर्शेद ही परीक्षा में पूरे उतरते हैं। उनके मन की उदारता और जिन्दादिली कभी नहीं खोती।

मेहता मनुष्य नहीं, आदर्श दानव (Monster) हैं। उनमें कुछ दोष ही नहीं। इसी प्रकार Richardson ने एक बार Sir Charles Grandison का चरित्र गढ़ा था। अभी तक उसको Monster कहते हैं। मेहता की सृष्टि उस अनुभूति से नहीं हुई जो होरी और भोला को सजीव बना देती है।

स्त्री-आन्दोलन पर मेहता के विचार रूढ़ि-बद्ध हैं। किन्तु जिस प्रकार वह मालती की परीक्षा लेते हैं, वह अपमान-जनक और अमानुषिक है।

मध्य-वर्ग की स्त्रियों में मिसेज़ खन्ना और मालती दो के ही

पूरे चित्र हैं। मिसेज़ खन्ना प्राचीन आदर्शों पर गढ़ी हैं। धीरे-धीरे मेहता के कारण मालती भी उसी ओर झुक जाती है।

मालती को उत्तेजित करने के लिए कथानक में प्रेमचन्द एक जंगली लड़की को लाते हैं। यह झाँकी सुन्दर है। यदि फिर भी वह जंगली लड़की दीखती है, तो पाठक कृतार्थ होते; किन्तु प्रेमचन्द उसको भूल गये। यह उसी प्रकार की घटना है, जैसे Tom Jones के कथानक में The man on the Hill.

क्या कोई स्त्री ईर्ष्यावश भी ऐसी संकोच-रहित बातें कह सकती है, जैसे मालती ने कहीं? (पृ० १३८) कभी-कभी मन में सदेह उठता है कि प्रेमचन्द स्त्री-हृदय समझते भी हैं या नहीं। किन्तु सिलिया और धनिया भी तो उन्हीं की सृष्टि हैं।

इस वातावरण में सोना और रूपा के उपहार के लिए हम प्रेमचन्द के कृतज्ञ हैं। इस कलह और पीड़ा-भरे संसार में इस रूप के अनुपम दर्शन से नेत्र कृतार्थ हुए। जगत के कोलाहल से दूर कल्पना के संसार में ऐसे प्राणी सगीतमय गति से विचरते हैं। इस बाल-सुलभ सरलता और चपलता में सुधा का-सा स्वाद है।

(४)

जीवन के प्रति प्रेमचन्द का दृष्टि-कोण क्या है? जान-बूझकर नहीं; किन्तु अनजाने में ही कलाकार अपने युग—कभी-कभी समस्त युगों—और संसार के लिए एक सन्देश लाता है। उसकी कृति में वह निहित होता है।

हमारे समाज की, विशेषकर ग्रामीण समाज की व्यवस्था ग़लत है। जो ग़रीब हैं, वे और भी ग़रीब होते जा रहे हैं; जो अमीर हैं, वे और भी अमीर। किसान क़र्ज़ के बोझ से पिसा जा रहा है। जो समाज के स्तम्भ हैं, उनमें कूट-कूटकर दुराचार कठोरता, लोभ और कपट भरे हैं। हरिजनों पर समाज का क्रूर

शासन है। नगरों में विलास और विनोद है—सौन्दर्य और स्वच्छता नहीं। ग्राम में ही प्रकृति ने पूरा साज संजा है। ग्राम की ओर लौटो, प्राचीन आदर्शों की ओर लौटो। स्त्री गृह-देवी हों; पुरुष बलवान और निष्ठावान हों।

गान्धी प्रेमचन्द के आचार्य हैं। उनकी फ़िलॉसफ़ी वास्तविकता से कुछ दूर है। शायद प्रेमचन्द ग्राम्य-जीवन का उद्धार चरित्रवान और उदार-हृदय कर्मचारियों में देखते हैं। क्या मनुष्य-स्वभाव भी बदल सकता है?

इस रोग की दवा कुछ भी हो, रोग प्रेमचन्द खूब समझते हैं। उपचार भी कुछ-न-कुछ निकलेगा ही। कलाकार के लिए आवश्यक नहीं कि 'अमृतधारा' जैसी सब रोगों की कोई एक ही दवा वह निकालकर रख दे। वह तो रोग की व्याख्या ही ठीक कर दे।

शायद मेहता का दृष्टि-कोण प्रेमचन्द का स्वयं अपना भी है। मेहता को वह जितना आदर्श बना सके हैं, बनाया है।

'सब कुछ पढ़ चुकने के बाद और आत्मवाद तथा अनात्मवाद की खूब छान-बीन कर लेने पर, वह इसी तत्व पर पहुँच जाते थे कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो के बीच में जो सेवा-मार्ग है, चाहे उसे कर्मयोग ही कहो, वही जीवन को सार्थक कर सकता है, वही जीवन को ऊँचा और पवित्र बना सकता है। किसी सर्वज्ञ ईश्वर में उनका विश्वास न था। यद्यपि वह अपनी नास्तिकता को प्रकट न करते थे, इसलिए कि इस विषय में निश्चित रूप से कोई मत स्थिर करना वह अपने लिए असम्भव समझते थे; पर यह धारणा उनके मन में दृढ़ हो गई थी कि प्राणियों के जन्म-मरण, सुख-दुःख, पाप-पुण्य में कोई ईश्वरीय विधान नहीं है। उनका ख़याल था कि मनुष्य ने अपने अहंकार में अपने को इतना महान बना लिया है कि उसके हरएक काम

की प्रेरणा ईश्वर की ओर से होती है। इसी तरह वह टिड्डियाँ भी ईश्वर को उत्तरदायी ठहराती होंगी, जो अपने मार्ग में समुद्र आ जाने पर अरबों की संख्या में नष्ट हो जाती हैं...। (पृष्ठ ५१५)

(५)

प्रेमचन्द का उनकी भाषा के कारण सर्वत्र मान हुआ। उनकी भाषा सरल, स्वाभाविक, मुहाविरेदार होती है। ग्राम्य-जीवन के वर्णन में उसमें एक नवीन स्फूर्ति आ जाती है। आजकल कुछ कलाकार भाषा में बनावट की सरलता लाने का प्रयत्न करते हैं। कुछ काव्यमय, दुरूह और जटिल तक हो जाते हैं। प्रेमचन्द अब तक अपना बीच का स्वाभाविक पथ लिये थे। किन्तु इस बार उनकी भाषा में एक नया रस, लचक और यौवन-सा आ गया है।

एक उदाहरण लीजिये—वैवाहिक जीवन के प्रभात में लालसा अपनी गुलाबी मादकता के साथ उदय होती है और हृदय के सारे आकाश को अपने माधुर्य की सुनहरी किरणों से रंजित कर देती है। फिर मध्याह्न का प्रखर ताप आता है, क्षण-क्षण पर बगूले उठते हैं, और पृथ्वी काँपने लगती है। लालसा का सुनहला आवरण हट जाता है, और वास्तविकता अपने नग्न रूप में सामने आ खड़ी होती है। उसके बाद विश्राममय संध्या आती है, शीतल और शान्त; जब हम थके हुए पथिकों की भाँति दिन-भर यात्रा का वृत्तान्त कहते और सुनते हैं, तटस्थ भाव से, मानो हम किसी ऊँचे शिखर पर जा बैठे हैं, जहाँ नीचे का जन-रव हम तक नहीं पहुँचता। (पृष्ठ ४६)

संस्कृत में कालिदास की उपमाएँ प्रसिद्ध हैं। रवि बाबू की कहानी या उपन्यास पढ़ने में उनकी उपमाओं का रस कुछ अपूर्व ही मिलता है। उपमा से लेखक की पहुँच और सरसता का पूरा अन्दाज़ हो जाता है।

'गो-दान' में प्रेमचन्द की उपमाएँ और उनके रूपक पुस्तक का एक भारी महत्व हैं। मन में एकदम प्रकाश-सा कर देते हैं और कल्पना को उत्तेजित कर देते हैं।

होरी के घर जब अनाज पहुँचा—'रुकी हुई गाड़ी चल निकली। जल में अवरोध के कारण जो चक्कर था, फेन था, शोर था, गति की तीव्रता थी, वह अवरोध के हट जाने से शान्त, मधुर-ध्वनि के साथ सम, धीमी, एक-रस धार में बहने लगी।' (पृष्ठ २४६)

होरी ने सब कुछ खोकर 'हारे हुए महीप की भाँति अपने को इन तीन बीघे खेत के क़िले में बन्द कर लिया था और उसे प्राणों की तरह बचा रहा था।' (पृष्ठ ५८८)

× × ×

'गो-दान' में प्रेमचन्दजी ने उत्कृष्ट कलाकार के सभी गुण दर्शाये हैं। उनकी शैली प्रौढ़ है। पात्र सच्चे और सजीव हैं। ग्राम्य-जीवन को वे खूब समझते हैं। उनकी रचना में गम्भीरता है, सरसता भी है। 'कायाकल्प' के बाद जो उनका पतन हुआ था, उसका प्रतीकार उन्होंने कर दिया। अपने पुराने गौरवमय स्थान पर अब वे अटल हैं।

हिन्दी में कुछ नवयुवक कलाकार दो-एक रूसी उपन्यास पढ़कर प्रौढ़ साहित्य-सेवियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे हैं। यह उचित ही है; उन्नति का लक्षण है; किन्तु साहित्य की कसौटियों को भूलना ठीक नहीं।

विदेशों की भाँति यदि हम भी अपने साहित्यिकों का सच्चा आदर करना चाहते हैं, तो निष्पक्ष होकर उनकी समालोचना करनी चाहिये।



जैनेन्द्र : उपन्यासकार

तप-विह्वल, खद्दर-भूषित, अहंकार से किञ्चिन्मात्र छुए एक युवक कलाकार की मूर्त्ति हमारे मन में उठती है। उसमें सरलता है, उत्साह है, लगन है, विचार-मौलिकता है। उच्च कलाकार के उसमें स्वाभाविक गुण हैं। कुछ ही वर्षों में उसने हिन्दी के कहानी संसार में अपना स्थान सुरक्षित बना लिया है। क्षितिज से उठकर वह नक्षत्र आकाश में ऊँचा पहुँच गया है। क्या है उसका भविष्य ? यह प्रश्न सहज ही मन में उठता है।

अब तक उसके दो कहानी-संग्रह—'वातायन' और 'एक रात'—और तीन उपन्यास निकल चुके हैं—'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र।' आज हम उसके व्यक्तित्व को भूलकर केवल उसके तीन उपन्यासों की 'परख' करेंगे। 'सुनीता' की प्रस्तावना में उपन्यासकार ने लिखा ही है : 'पाठक पुस्तक में मुझे मुश्किल से पायेगा। यह नहीं कि मैं उसके प्रत्येक शब्द में नहीं हूँ। लेकिन पुस्तक के जिन पात्रों के माध्यम से मैं पाठक को प्राप्त होता हूँ, प्रत्येक स्थान पर उन पात्रों के अनुरूप मेरा रूप विकृत हो जाता है। उन्हें सामने करके मैं ओट में हो जाता हूँ। जैसे सृष्टि ईश्वर को छिपाये है, वैसे मैं भी अपने इन पात्रों के पीछे छिपा हुआ हूँ...'

इन शब्दों के पीछे जैनेन्द्र कलाकार के अनेक गुण छिपे हैं, सरलता, मौलिकता और शब्दों के आडम्बर को चीरता हुआ शॉ-सरीखा उनका सुपरिचित 'अहंभाव'।

जैनेन्द्र छोटा पट-चित्र पसंद करते हैं। दो-एक मनुष्य-भावनाओं को लेकर ही वह गहरे से गहरे जाने का प्रयत्न करते हैं। 'परख' और 'सुनीता' के कथानक में एक प्रकार की समानता भी है। एक स्त्री के चारों ओर दो पुरुषों के जीवन-स्वप्न केन्द्रित हैं। कभी-कभी ऐसा भान होता है कि जैनेन्द्र की कला उपन्यास-कला नहीं, वरन् गल्प-कला है, क्योंकि जीवन के किसी लघु अंग की विवेचना ही उन्हें अधिक पसंद है। जैनेन्द्र मनुष्य के अन्तर्भावों के विश्लेषण में बहुत दूर जाते हैं और उनकी कला में हमें जीवन की जटिलता का भास होता है, इसी कारण उनको सफल उपन्यासकार कहा जा सकता है। कला का कोई एक स्थायी स्वरूप नहीं। युग और व्यक्ति-विशेष के साथ उसके बाह्य रूप में परिवर्तन आ जाता है।

'सुनीता' की प्रस्तावना में जैनेन्द्र स्वयं कहते हैं : 'पुस्तक में मैंने कोई लम्बी-चौड़ी कहानी नहीं कही है। तीन-चार व्यक्तियों से ही मेरा काम चल गया है। इस विश्व के छोटे से छोटे खण्ड को लेकर हम चित्र बना सकते हैं और उसमें सत्य के दर्शन पा सकते हैं। उसके द्वारा हम सत्य के दर्शन करा भी सकते हैं। जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्ड में भी है। इसलिए अपने चित्र के लिए बड़े कन्वास की जरूरत मुझे नहीं लगी। थोड़े में सब कुछ को क्यों न दिखाया जा सके?'

जैनेन्द्र का ससार मानो अँधियारे आलोक से झिलमिल है। एक प्रकार का कुण्ठित, अवसाद भरा यहाँ का वायुमंडल है। खुले ग्राम, खेत, हवा इस व्यथा-भार से दबे निम्न श्रेणी के मध्य वर्ग को नसीब नहीं। इस चित्रपट पर जैनेन्द्र के कठिन जीवन की स्पष्ट छाप है। 'सुनीता' में अवश्य हम कुछ खुली-सी हवा में साँस लेते हैं। नहीं तो 'परख' की काश्मीर-सुषमा में भी

हर्ष और उल्लास का नाम नहीं। मध्य वर्ग के डूबते प्राणी ही निरन्तर इस जग में तैरते-उतराते हैं। कट्टो का भग्न घर जहाँ अधपकी जामुन पेड़ से अनायास ही पट-नट गिर पड़ती हैं; सत्य का 'दीवारों से घिरा' अँधेरा कमरा; सुनीता का सन्नाटे-भरा घर जहाँ पिस्तौल का शब्द भी वायु में गूँज कर खो जाता है; प्रमोद की बुआ की कुण्ठित कोठरी—व्यथा-भार से दबे इस वायुमंडल के बादल मानो अब बरसे, अब बरसे!

'सुनीता' में जो चित्र बनाने का प्रयत्न हरिप्रसन्न कर रहा है, वही जैनेन्द्र के हृदय की पीड़ा है। शब्दों में उसे व्यक्त करने का वे प्रयत्न कर रहे हैं। 'हिरन के पेट में जो गाँठ होती है, उसे कस्तूरी कहते हैं। उसको लिये-लिये वह भ्रमता रहता है, बेचैन रहता है। उसके लिए वह शाप है। कस्तूरी हमारे लिए है, उसके लिए वह गाँठ है। यह चित्र हरिप्रसन्न के चित्त की गाँठ है।' यह शब्द जैनेन्द्र के लिए भी लागू हो सकते हैं।

जैनेन्द्र के प्लॉट सीधे-सादे होते हैं। वे स्वयं ही कहते हैं: 'कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं है।' वे मानव-स्वभाव की बहुत उलझी हुई गुत्थियाँ सुलझाने में लगे हैं। 'परख' में सत्यधन खोटे निकले। कट्टो से वचनबद्ध होकर भी वे सुख और वैभव की ओर ढुलक पड़े। शरत्चन्द्र की 'अरक्षणीया' में यही चित्र भयंकर होकर दुःसह दुःखदायी हो जाता है। अरक्षणीया का अपने मुख पर वह टिकली और काजल लगाना कितना असह्य हो उठता है! 'सुनीता' और रवि बाबू के 'घरे-बाहरे' में विद्वानों ने समता देखी है। एक स्त्री कुछ विचित्र ही ढंग से दो मित्रों को पास लाती है और दूर करती है। 'सुनीता' का पूर्ववर्त्ती भाग उच्च और मँजी कला का नमूना है। पिछले भाग में कलाकार कथा का प्रवाह ठीक-ठीक निभा सकने पर

भी अपने मंतव्य में कुछ अस्पष्ट है। यह भी कह सकते हैं कि वह अधिक गूढ़ हो गया है। 'त्याग-पत्र' अपने लक्ष्य में अविराम और अचूक धार में बहा है। भाग्य की-सी कठिनता और अनवरतता इसके कथानक में है। इस प्रबल प्रभाव का विराम जीवन की चट्टानों पर टकराकर भग्न होने में ही है।

जैनेन्द्र के वस्तु-भाग में कलाकार बहुत आगे रहता है। हमारी आँखों की ओर नहीं रहता। निरन्तर वह अपने पात्रों के भावों का विश्लेषण करने में निमग्न है। 'परख' में अवश्य अनेक नाट्य-दृश्य हैं, जिनमें हम कहानीकार को भूल-से जाते हैं।

जैनेन्द्र के पात्रों में चार पुरुष और तीन स्त्री विशेष उल्लेखनीय हैं। सत्यधन और बिहारी, श्रीकान्त और हरिप्रसन्न इस प्रकार आमने-सामने रखे गये हैं कि एक से दूसरे के चरित्र पर प्रकाश पड़े। जैनेन्द्र मनुष्यों का चित्रण करते हैं। देवता और दानवों में उन्हें विश्वास नहीं। 'परख' की भूमिका में आप लिखते हैं: 'सभी पात्रों को मैंने अपने हृदय की सहानुभूति दी है। जहाँ यह नहीं कर पाया हूँ, उसी स्थल पर, समझता हूँ, मैं चूका हूँ। दुनिया में कौन है जो बुरा होना चाहता है—और कौन है, जो बुरा नहीं है, अच्छा ही अच्छा है? न कोई देवता है, न पशु। सब आदमी ही हैं, देवता से कम और पशु से ऊपर।'

फिर भी हमें जैसे लगता है कि सत्यधन अपने आदर्श से गिर गये, जीवन की 'परख' में पूरे नहीं उतरे और बिहारी कुछ अपने से भी ऊँचा उठ गया। सत्यधन की भाँति ही 'परिणीता' में शेखर अपने वचन से डिगकर पथभ्रष्ट हो गया था। दूर आलोक देखकर पतंग के समान वह उधर ही ढुल पड़ा। बिहारी का चरित्र कट्टो ने खूब समझा है:

'तुममें तो कुछ समझने को है ही नहीं। जो बाहर है, वही

भीतर है। भीतर भी वही विनोद का झरना झरता रहता है, जिसका आधा जल आँसू का और आधा हँसी का है, और जिसमें से हर बात आर-पार दिखाई देती है।'

श्रीकान्त और हरिप्रसन्न भी इसी प्रकार एक-दूसरे की स्निग्ध सौम्यता और उग्र तेजस्विता को और भी गहरी दिखाते हैं। श्रीकान्त हमको बंगाल के अमर कलाकारों का अपने नाम के अतिरिक्त भी और कारणवश स्मरण दिलाता है। उसके चरित्र में वही गंभीर सरलता है, जो हमें बड़े साहित्य के पात्रों में मिलती है। हरिप्रसन्न अग्नि के समान प्रखर और प्रचण्ड है। गौरमोहन का उसे सूक्ष्म रूप समझना चाहिये। क्रांति के युग का वह प्रतिनिधि है। वह कहता है: 'आज और कल के बीच में बन्द हम नहीं रहेंगे। शाश्वत को भी छुयेंगे। सनातन और अनन्त को भी हम चखेंगे। तुमने बनी-बनाई राह सामने कर दी है। वह हमें कुछ भी दूर नहीं ले जाती। हमारा मार्ग अनन्त है और यह तुम्हारी राह अपनी समाप्ति पर संतुष्ट पारिवारिक जीवन देकर हमें भुलावे में डाल देती है।'

इन पात्रों के चित्रण में कठोर मनोवैज्ञानिक सत्य है। इनका स्थान हमारे साहित्य में चिर-स्मरणीय होगा। जैनेन्द्र की तीन स्त्री पात्र कुछ और भी रहस्यमयी और गहन हैं। जैनेन्द्र ने यह अवश्य समझ लिया है कि स्त्री एक अबूझ पहेली है। यहीं उनके चरित्र मार्मिक हैं। यद्यपि कभी-कभी उनकी स्त्री-पात्र ऐसे व्यापार भी कर डालती हैं, जो सहज बुद्धि की समझ में नहीं आते।

कट्टो उनकी स्त्री पात्रों में पहली होती हुए भी गम्भीरता लिये है। बड़ी भावुकता से जैनेन्द्रजी ने 'परख' कट्टो को समर्पित किया है:

'मेरी कट्टो, तुमने कुछ नहीं लिया—यह तो ले लो। यह

तुम्हारे ही लिए है। देखो, इंकार न करो, टालो मत। अपने को तुमने विधवा ही रखा, इसको सधवा बना दो। अपने चरणों में आने दो।...' रवि बाबू ने अपनी एक कहानी में पुराने भारतीय कारीगरों का वर्णन किया है। वे तलवार के एक ही वार में फल ऐसा काट देते थे कि दो टुकड़े होकर भी वह एक-सा लगता था, जब तक कोई उसे हिलाये-डुलाये नहीं। कट्टो के जीवन में हँसी, खेल, विनोद इसी प्रकार भरा था, किन्तु पीड़ा के एक ही प्रहार ने उसका विनोद गांभीर्य से काट कर अलग कर दिया। कट्टो का चरित्र जैनेन्द्र-साहित्य का एक उज्ज्वल नक्षत्र है। न जाने कहाँ से उसमें इतनी समझ, गम्भीरता और बलिदान-शक्ति आ गई!

'सुनीता' रहस्यमयी है। उसको समझना कठिन है। किन्तु हमारी पूरी सहानुभूति उसके साथ है। नवीनता की खोज के आक्षेप से अपने को बचाते हुए जैनेन्द्रजी ने हमसे कहा था कि 'सुनीता' में भारतीय स्त्री का पातिव्रत्य पराकाष्ठा को पहुँच गया है। कोई भी बलि उसकी शक्ति के बाहर नहीं। श्रीकान्त उससे कह गये थे कि हरिप्रसन्न को रोकना ही होगा। उसे रोकने के लिए सुनीता ने अपने स्त्रीत्व तक की बाजी लगा दी। मिश्र देश की Sphinx और सुप्रसिद्ध चित्र Mona Lisa के समान रहस्यमयी इस नारी के मन में न जाने क्या मधुर पीड़ा-मिश्रित भाव छिपे हैं! लौह तीली के समान वह कठिन है और कितनी भी झुक जाने पर नहीं टूटती।

'त्याग-पत्र' केवल एक स्त्री—मृणाल अथवा प्रमोद की बुआ—की जीवन-कथा है। गहरा और कठिन अवसाद मृणाल के मन पर जमा है। भारतीय समाज की कड़वी और सच्ची आलोचना, 'त्याग-पत्र' में है। यह आलोचना सुनने और

समझने का साहस सबमें होता भी नहीं। मृणाल की विचार-धारा शायद हम न ठीक-ठीक समझें; किन्तु कितना अभिमान और आत्म-सम्मान उसके मन में है। कट्टो और सुनीता से भी अधिक वह हमारे मन को विचलित और व्यथित कर देती है।

जैनेन्द्र हिन्दी के क्रान्तिकारी लेखक हैं। रूढ़ियों पर उन्होंने कठिन प्रहार किये हैं। किसी सरल, स्वच्छ, आकर्षक जीवन की खोज में वह निरत हैं। किन्तु शायद उन्हें इस अँधियारे में अपना पथ स्पष्ट नहीं सूझता। 'मन में एक गाँठ-सी पड़ती जाती थी। वह न खुलती थी, न घुलती थी। बल्कि, कुछ करो, वह और उलझती और कसती ही जाती थी। जी होता था, कुछ होना चाहिये, कुछ करना चाहिये। कहीं कुछ गड़बड़ है। कहीं क्यों, सब गड़बड़ ही गड़बड़ है। सृष्टि ग़लत है, समाज ग़लत है, जीवन ही हमारा ग़लत है। सारा चक्कर यह ऊटपटाँग है। इसमें तर्क नहीं है, संगति नहीं है, कुछ नहीं है। इससे ज़रूर कुछ होना होगा, ज़रूर कुछ करना होगा। पर क्या-आ? वह क्या है, जो भवितव्य है और जो कर्तव्य है?'

अथाह सागर की भाँति जीवन हमारे सामने हिलोर मार रहा है। उसका आर-पार कुछ नहीं सूझता: 'समंदर है। अपनी नन्हीं-नन्हीं काग़ज़ की डोंगी लिये उसके किनारे खेलने के लिए आ उतरते हैं। पर किनारे ही कुशल है, आगे थाह नहीं है।' ऐसी अधिकतर हमारी मनोवृत्ति है। जैनेन्द्र आगे बढ़ गये हैं; किन्तु पृथ्वी उनके पैरों के नीचे से भी निकल रही है। 'उस सागर की लहरों का अन्त कहाँ है? कूल कहाँ है? पार कहाँ है? कहीं पार नहीं है, कहीं किनारा नहीं है। आँख के ठहरने को कोई सहारा नहीं है। क्षितिज का छोर है, जहाँ आस्मान समंदर से आ मिला है। वहाँ नीला अँधियारा दीखता है। पर छोर वहाँ

भी नहीं है। वहाँ छोर तो हमारी अपनी ही दृष्टि का है, अन्यथा वहाँ भी वैसी ही अकूल विस्तीर्णता है।'

जैनेन्द्र की भाषा के अनेक गुण इस अवतरण में हैं। सादगी, गान्धी के 'नवजीवन' का स्मरण दिलानेवाली; काव्य तक उठने की क्षमता; एक खटकनेवाली कृत्रिमता—जैसे कोई अच्छा बड़ा मनुष्य तुतलाने का प्रयास करता हो! 'किन्तै' 'ठैरा' 'समंदर' हमारे कान को नहीं सुहाते। 'परख' से 'त्याग-पत्र' तक जैनेन्द्र की शैली खूब परिमार्जित हो चुकी है। वह अधिक प्रवाहमयी है और प्रौढ़ावस्था में पदार्पण कर चुकी है। 'परख' में बहुधा काव्य का आनन्द उनकी भाषा हमें देती है; किन्तु यह स्वाभाविक है कि कथावस्तु में अधिक प्रवाह आने पर गद्य-काव्य की कुछ हानि हो।

जैनेन्द्र कलाकार अपनी रचनात्मक शक्तियों पर आज पूर्ण रूप से अधिकारी हैं। 'परख', 'सुनीता' और 'त्याग-पत्र' का मनन कम से कम यह हमें बताता है। भविष्य में हिन्दी उनसे बहुत कुछ आशा कर सकती है। मध्याह्न में पहुँच कर यह नक्षत्र ज्योति से हमारा जग भर देगा।

●

'बच्चन'

हिन्दी कविता में 'हालावाद' नाम की जो एक नवीन धारा बह रही है, उसे समझने के लिए एक कवि का व्यक्तित्व कुछ ऐतिहासिक कारणों के साथ-साथ समझना जरूरी है। 'हालावाद' का गान्धीवाद से भी कुछ संबंध है, यद्यपि ऊपर से सुनने में यह बात अजीब-सी लगती है। 'बच्चन' ने दाँडी की समर-यात्रा से प्रेरित हो युनिवर्सिटी छोड़ दी थी। जेलों में अनेक भावुक युवा कवि बन गये, और हाला को याद कर कारागार का कष्ट भूलने का प्रयत्न करने लगे। 'बच्चन' की 'मधुशाला' में क्रांति की गूँज स्पष्ट है, यद्यपि केवल कला के नाते उसका मूल्य उतना नहीं, जितना 'मधु-कलश' आदि का। 'बच्चन' में प्रचलित समाज़-योजना के प्रति प्रबल विरोध का भाव है। मध्यवर्ग की खंडहर संस्कृति में फँसे विफल वह हाला में अपने को भूल जाना चाहते हैं; जैसे 'रूपाभ' से पहले के पन्त कोमल रेशमी तारों के स्वप्न-जाल में, 'प्रसाद' अतीत के इतिहास में और महादेवी वर्मा दीप जला प्रियतम की प्रतीक्षा में। यही आधुनिक हिन्दी-काव्य का निराशावाद है।

'बच्चन' नवयुवक कवि हैं। नित नूतन शक्ति वे संचित कर रहे हैं। 'मधुशाला' से 'मधुबाला' और 'मधुबाला' से 'मधु-कलश' तक उन्होंने विकास और प्रगति के नियमों को निबाहा है। अब 'निशा-निमन्त्रण' और 'एकान्त संगीत' में नई दिशाओं की ओर उन्मुख वह उन्नति के ही पथ पर चल रहे हैं।

क्रान्ति की भावना अब भी उनमें प्रबल है। किन्तु वह पर्वतों में विचरनेवाली कविता की उन्मत्त धार मैदान में आकर प्रौढ़, गहरी और गम्भीर हो रही है। अब मनुष्य का केवल हृदय ही न छूकर वह उसके मस्तिष्क तक पहुँचती है।

क्या है हिन्दी के इस तेजस्वी, अभिमानी और कुछ हद तक उच्छृङ्खल कवि के छोटे-से जीवन का इतिहास? क्या है उसके अदम्य व्यक्तित्व की रूप-रेखा? क्या इस बाहरी वेष-भूषा में छिपा उसका व्यक्तित्व हम खोज भी सकते हैं? वह स्वयं कहता है:

'बूझ दुनिया यह पहेली, जान 'कुछ' मुझको सकेगी!'

जब कलाकार कोई व्यक्ति-चित्र बनाता है, तो बाह्य रूप-रेखा कुछ मिलती-जुलती-सी होकर भी विकृत हो जाती है, क्योंकि चित्रकार बाह्य मनुष्य का नहीं, वरन् उसके अन्तर का चित्र खींचने का प्रयत्न करता है। 'बच्चन' के रूखे, बिखरे बाल, कृश गात, किसी घोर तपसाधन में सुखाया शरीर, मस्ती, अलस भाव भरी आँखें, कुछ चीनियों जैसे सूमे-से पलक—उनके मुख का पूरा भाव, उनकी संपूर्ण आकृति मानो 'मधुशाला' का साकार रूप हो! किन्तु 'बच्चन' का शरीर व्यायाम से गठा, स्वस्थ और कठिन है। हम सोचते हैं अवश्य ही इस व्यक्ति का समाज से विरोध होगा, और इस संघर्ष में केवल अभिमान ही उसका सहायक होगा! कुछ-कुछ Faust का हमें स्मरण हो आता है।

'बच्चन' के व्यक्तित्व का एक बड़ा आकर्षण है, उनका स्वर। हिन्दी की अनेक सभाएँ उनके मधु-गान से मोहित हो चुकी हैं। जब वे अपने गंभीर कण्ठ से स्वरों के उतार-चढ़ाव

सहित बड़ी तल्लीनता से अपनी 'पगध्वनि' सुनाते हैं, तो हमें संगीत और साहित्य का सुख एक साथ ही मिलता है। 'बच्चन' की कविता का पूरा आनन्द उसे उन्हीं के मुख से सुनकर मिलता है।

'बच्चन' का जन्म २७ नवम्बर १६०७ को प्रयाग 'चक' में हुआ; १६२६ में मुट्ठीगंज गये। जहाँ वह अब भी रहते हैं। आपका नाम 'हरिवंश राय' कम लोग जानते हैं। आपकी माँ आपको 'बच्चन' कहकर पुकारती थीं। यह उचित ही है कि उस स्नेह के नाम से आपने जग में ख्याति पाई। आपकी प्रारंभिक शिक्षा म्यूनिसिपल स्कूलों में हुई। सन् १६२५ में आपने कायस्थ पाठशाला से हाई स्कूल पास किया; १६२७ में गवर्नमेन्ट इंटर कॉलिज से इंटरमीडिएट और १६२६ में प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० किया। हिन्दी-साहित्य की आपको शुरू से ही अच्छी जानकारी रही है; बी० ए० में हिन्दी-साहित्य में आपको लगभग ८०% नम्बर मिले थे और इसी कारण आपको प्रथम श्रेणी पाने में सुविधा रही थी। एम० ए० आपने अंग्रेजी में शुरू किया; किन्तु उसी वर्ष सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ा और आपने यूनिवर्सिटी त्याग दी।। गान्धीवाद से असंतोष बढ़ने पर आपका क्रान्तिवादियों से संपर्क हुआ। यहाँ आपको 'प्रेम की सुकुमारता और कर्त्तव्य की दृढ़ता साथ-साथ मिली। इस बीच आपने 'चाँद', 'भविष्य', 'अभ्युदय', प्रयाग महिला विद्यापीठ, पायनियर प्रेस और इलाहाबाद मिडिल स्कूल आदि में काम भी किया। आपके जीवन का यह भाग १६३४ के अन्त तक रहा। अब भी आप उस कठिन जीवन की याद कर सिहर उठते हैं।

आपका विवाह १६२६ में हो गया था। नवम्बर १६३६ में

आपकी पत्नी का देहावसान आपके जीवन की दारुण घटना है। निरन्तर ही 'बच्चन' को उनकी काव्य-प्रेरणा में स्वर्गता श्यामादेवी ने सहायता दी। ऊँचे आलोचक के उनमें गुण थे। उन्होंने 'बच्चन' से कहा था—'तुम्हारी 'मधुशाला' को लोग भूल जायँगे, लेकिन तुम्हारी 'खैयाम की मधुशाला' जीवित रहेगी। बड़े सुन्दर शब्दों में 'बच्चन' ने अपना 'मधु-कलश' आपकी भेंट किया है: 'यह 'मधु-कलश' दिवंगता देवी श्यामा की स्मृति में विशाल विश्व-वृक्ष की डाल में चिरकाल तक बँधा रहे!' 'बच्चन' लिखते हैं—'मेरे जीवन के सबसे अधिक संघर्ष-मय काल में मुझे जैसी संगिनी की आवश्यकता थी, वह बिलकुल वैसी ही थीं। उन्होंने अपने को मेरे लिए मिटा दिया।'

१९३४ में बच्चन को अग्रवाल विद्यालय में हिन्दी शिक्षक की पक्की जगह मिली। अपने जीवन-स्वप्नों में निराश होने के कारण १९३५ में आप क्षय रोग से ग्रस्त हुए। 'इस पार—उस पार' कविता इसी बीमारी की दशा में लिखी गई थी। किसी प्रकार आप अच्छे हो गये; किन्तु जिस महीने आप अच्छे हुए, उसी महीने आपकी पत्नी बीमार हो गई और फिर चारपाई से न उठ सकीं।

काम में अपने को भूलने के लिए जुलाई १९३७ में आपने फिर यूनिवर्सिटी में नाम लिखाया। एम० ए० पास करके इस वर्ष आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी० टी० के लिए पढ़ रहे हैं। आशा है इतना भटकने के बाद आपकी जीवन-नौका कहीं ठौर-ठिकाने से लगेगी।

कविता, संगीत और चित्रकला की ओर आपकी रुचि बहुत बचपन से थी। संगीत और चित्रकला के लिए आपको प्रोत्साहन न मिला। कुछ कविताएँ आपने आठवीं कक्षा में लिखी थीं। वे

नष्ट हो गई हैं। क्रमानुसार लिखने का कार्य १६३० से आरम्भ हुआ। 'तेरा हार' १६३० की कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह की बहुत-सी कविता आपका देश-प्रेम व्यक्त करती हैं; कुछ भविष्य का भी इंगित करती हैं। किन्तु इस संग्रह में अबके सुपरिचित 'बच्चन' की प्रौढ़ता और काव्य-प्रेरणा नहीं। इस काल के कई संग्रह अभी तक अप्रकाशित हैं। 'तेरी बाँसुरी', 'मानसरोवर', 'कदंब', 'चाँदनी' और 'उपवन'।

'बच्चन' का गल्प-संग्रह भी अप्रकाशित है। आप सुन्दर गल्प लिखते हैं। 'निशा-निमन्त्रण' के आरम्भ में आपने अपनी एक कहानी दी भी है। युवक-गल्प-सम्मेलन, प्रयाग में आपको अपनी गल्प के लिए प्रथम पुरस्कार मिला था। सुन्दर, स्निग्ध भाषा और भाव-गम्भीरता आपकी गल्प के विशेष गुण हैं। गद्य-काव्य के वह अधिक समीप है।

'मधुशाला' से 'बच्चन' को सर्वप्रथम ख्याति मिली। एक समय उत्तरापथ पर उसका राग इतनी शीघ्रता से लोकप्रिय हो रहा था कि कुछ सामन्तीय मनोवृत्ति के लोग कहने लगे, वह 'गलियों का गाना' हो जायगी। अब भी 'बच्चन' 'मधुशाला' के कवि के रूप में ही लोक-कल्पना में बसे हैं. यद्यपि काल के अनुसार उनकी कविता का रूप बदल रहा है। इसी मधु-प्रेम के कारण 'बच्चन' हिन्दी में उमर ख़ैयाम के सबसे सफल रूपान्तरकार रहे हैं। एक प्रसिद्ध रुबाई का अनुवाद आप करते हैं:

'उषा ने फेंका रवि-पाषाण
निशा-भाजन में जल्दी जाग
प्रिये! देखो पा यह संकेत
रहे कैसे तारक दल भाग!

और देखो तो उठकर, प्राण !

अहेरी ने पूरब के लाल

फँसा ली सुल्तानी मीनार

बिछा कैसा किरणों का जाल!'

'बच्चन' की 'मधुशाला' में इस युग और समाज की पीड़ा निहित है। बाज़ार में बिकनेवाली मदिरा वह नहीं खोज रहे :

'वह हाला कर शान्त सके जो

मेरे अन्तर की ज्वाला।

जिसमें मैं बिंबित-प्रतिबिंबित,

प्रति पल वह मेरा प्याला ॥

'मधुशाला' वह नहीं जहाँ पर,

मदिरा बेची जाती है,

भेंट जहाँ मस्ती की मिलती,

मेरी तो वह मधुशाला ॥'

कविता उनकी मधुशाला है। यही मधु पीकर वे बेसुध हो जाते हैं :

भावुकता अंगूर-लता से,

खींच कल्पना की हाला।

कवि बनकर है साक़ी आया,

भरकर कविता का प्याला ॥'

कहीं-कहीं 'मधुशाला' की जीवन से तुलना की गई है। अनेक

तृषित जीव प्यास लिये इस मदिरालय में आते हैं, और पलभर रुककर प्यास बुझाने का विफल प्रयास कर चले जाते हैं :

'कितनी थोड़ी-सी यौवन की
हाला, हा, मैं पी पाया !
बन्द गई हो कितनी जल्दी
मेरी जीवन 'मधुशाला' !'

'मधुशाला' मनुष्य-जीवन का चरम-लक्ष्य है। अनेक पथ उधर जाते हैं, किन्तु मिलते सब एक ही स्थान पर हैं :

'मदिरालय जाने को घर से
चलता है पीने वाला,
'किस पथ से जाऊँ ?' असमंजस
में है वह भोला-भाला,
अलग-अलग पथ बतलाते सब
पर मैं यह बतलाता हूँ—
'राह पकड़ तू एक चलाचल,
पा जायेगा मधुशाला ॥'

'मधुबाला' और 'मधु-कलश' की कुछ कविताओं में 'बच्चन' ने अपना आत्म-परिचय दिया है। आप 'निराशावादी' हैं; आपके काव्य में 'वासना का पुट' है; आप पथ-भ्रष्ट हैं—ऐसे अनेक आक्षेप आप पर हुए हैं। उन्हीं का उत्तर आपने इन कवि-ताओं में दिया है। 'आत्म-परिचय' में आपने अपना चित्र खींचा है :

'मैं निज रोदन में राग लिये फिरता हूँ,
शीतल वाणी में आग लिये फिरता हूँ ;
हों जिस पर भूपों के प्रासाद निछावर,
मैं वह खँडहर का भाग लिये फिरता हूँ !

× × ×

है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता,
मैं स्वप्नों का संसार लिये फिरता हूँ !'

'पथभ्रष्ट' शीर्षक कविता में और भी स्पष्ट और मधुर शब्दों में आपका व्यक्तित्व प्रगट हुआ है :

'पार तम के दीख पड़ता
एक दीपक झिलमिलाता,
जा रहा उस ओर हूँ मैं
मत्त मधुमय गीत गाता,
इस कुपथ पर या सुपथ पर
मैं अकेला ही नहीं हूँ,
जानता हूँ, क्यों जगत फिर
उँगलियाँ मुझपर उठाता—
मौन रहकर इस लहर के
साथ संगी बह रहे हैं,
एक मेरी ही उमङ्गें
हो उठी हैं व्यक्त स्वर में।

हैं कुपथ पर पाँव मेरे

आज दुनिया की नजर में ॥'

'बच्चन' विद्रोही कवि हैं। आपका व्यक्तित्व विद्रोह की प्रतिमूर्ति है। यद्यपि नियति के वारों से आपका मस्तक रक्ताभ है, किन्तु अभी तक वह झुका नहीं। अब तक आपके काव्य का विशेष गुण आपका यही विद्रोह-भाव रहा है। आपके अस्त-व्यस्त बाल और कपड़े, आपकी मधु-पूजा, आपकी भाषा में उर्दू का कुछ पुट, आपका काव्य-संगीत—सभी में कुछ नवीनता है। प्रत्येक बात आपको क्रान्तिकारी कवि ऐलान करती है। आपका अभिमान, आपके काव्य में वासना की गंध, आपकी स्वच्छंदता और उच्छृङ्खलता—उसी विद्रोह भावना के दूसरे रूप हैं।

अब यह आग दबती जा रही है। किन्तु फिर भी राख में अंगारे या मैदान में दूर चमकती दीपशिखा की भाँति आपके काव्य में दीखती है। आपकी कविता के वेषभूषा में अब संयम आ चला है। इस युग के अग्रगण्य-कवियों में अब आपकी गिनती होने लगी है। आपका संगीत अब अत्यन्त कोमल और सुकुमार हो गया है :

'है आज भरा जीवन मुझ में,

है आज भरी मेरी गागर।'

× × ×

'है आज गया कोई मेरे

तन में, प्राणों में, यौवन भर

अपने से ही फूटा पड़ता

मुझ में लय-ताल सहित मृदु-स्वर।'

किन्तु अब भी आप कह उठते हैं :

'रक्त से सींची गई है
राह मन्दिर-मस्जिदों की,
किन्तु रखना चाहता मैं
पाँव मधु-सिंचित डगर में।
पाप की हो गैल पर
चलते हुए ये पाँव मेरे,
हँस रहे हैं उन पगों पर
जो बँधे हैं आज घर में ॥'

हाल में ही 'बच्चन' के नये सौ गीतों का संग्रह 'निशा-निमन्त्रण' निकला है। इन गीतों में Elegy का भाव है। 'रात्रि के अन्धकार-पूर्ण वातावरण से अपनी अनुभूतियों को रंजित कर' आपने यह गीत तैयार किये हैं। दुःख का भाव जो सदैव 'बच्चन' की कविता में प्रमुख रहा है, इन गीतों में कुछ अधीर और दुःसह रूप में प्रकट हुआ है। अपने लिए आप कहते हैं :

'डर न लगे सुनसान सड़क पर,
इसी लिये कुछ ऊँचा स्वर कर
विलग साथियों से हो कोई पथिक, सुनो, गाता आता है।
अन्धकार बढ़ता जाता है!'
'अन्तरिक्ष में आकुल-आतुर,
कभी इधर उड़, कभी उधर उड़

पन्थ नीड़ का खोज रहा है पिछड़ा पंछी एक—अकेला !

बीत चली सन्ध्या की बेला !'

इन गीतों में 'बच्चन' ने एक 'साथी' की कल्पना की है। उसी को गुनगुनाकर आपने अपने गीत सुनाये हैं :

साथी, अन्त दिवस का आया ।'

अपने नये संग्रह 'एकान्त सगीत' में, आप एकाकी हैं। दैव ने ही आपका जीवन-संगी छीन लिया।

आशा है, कठोर चिकित्सक काल आपके इस असह्य पीड़ा-भार को कुछ हल्का कर देगा। कवि 'बच्चन' तो निरन्तर उन्नति के पथ पर हैं। 'निशा-निमन्त्रण' पूरा करके आपने गीतों की एक नई माला शुरू कर दी है। आज 'बच्चन' की काव्य-धारा अदम्य वेग से बह रही है। आज आपके कण्ठ का उमड़ा गान रोके नहीं रुकता :

'मैं मौन खड़ी किस भाँति रहूँ,

जब बज उठते हैं पग-पायल !'

प्रगति की ओर जाते हुए इस कवि से हिन्दी को बड़ी-बड़ी आशाएँ हो रही हैं। नियति ने उसका जीवन पीड़ा से भर दिया है। किन्तु जो उसका गीत उमड़कर कुछ दिन तक कण्ठ में अवरुद्ध था, फिर फूट निकला है। उसके जीवन में अब एक नया व्यवधान और संयम आ रहा है। किन्तु हम आशा करते हैं कि यह विद्रोह की चिनगारी उसके हृदय में सदा ही जलती रहेगी ; क्योंकि असंतोष ही मनुष्य का जीवन है !



नरेन्द्र

हिन्दी के तरुण प्रगतिशील कवियों में नरेन्द्र का स्थान ऊँचा है। जिस गति से आप आगे बढ़ रहे हैं, उसे ध्यान में रखते हुए आप शीघ्र ही काव्य-प्रासाद के एक प्रमुख स्तम्भ बन जायँगे।

नरेन्द्र अपने पहले दो प्रकाशन 'शूल-फूल' और 'कर्ण-फूल' में संकलित रचनाओं का अलग संग्रह 'प्रभात-फेरी' निकाल चुके हैं। आपकी नयी रचनाओं का संग्रह 'प्रवासी के गीत' नाम से निकला है। आपकी नयी कविता 'ज्येष्ठ का मध्याह्न' आपके भविष्य की ओर इशारा करती है। इस कविता में कुछ नया ही संगीत और विचार-विन्यास है। अजगर के समान हमारे समाज के ऊपर आरूढ़ शक्तियों का यहाँ निदर्शन है और कवि की आत्मा का मुक्त-संगीत :

> 'ज्यों घेर सकल संसार, कुण्डली मार
> पड़ा हो अहि विशाल,
> आक्रान्त धरा की छाती पर
> गुम-सुम बैठा मध्याह्न-काल !'

नरेन्द्र का मधुर व्यक्तित्व अनायास ही मन उनकी ओर आकृष्ट करता है। आप गर्व-मुक्त चिन्तनशील, सहज-भावुक कवि हैं। विश्व-साहित्य के मापदण्ड आपके पास हैं, अतएव

अहम् की मात्रा आप में नहीं-सी है। आप अपने छोटे-से जीवन में ही वेदना-भार से दब चुके हैं, अतः आपके काव्य का भाव-स्रोत भी विकल उमड़ पड़ा है :

'मैं सब दिन पाषाण नहीं था !
किसी शापवश हो निर्वासित
लीन हुई चेतनता मेरी,
मन-मंदिर का दीप बुझ गया,
मेरी दुनिया हुई अँधेरी !
पर यह उजड़ा उपवन सब दिन
बियाबान सुनसान नहीं था !
मैं सब दिन पाषाण नहीं था।'

अब शायद नरेन्द्र अपने जीवन के इस पीड़ा-भार से मुक्त हो चुके हैं और अतीत को भूल भविष्य की ओर अपने नेत्र उठा रहे हैं।

हिन्दी के सौम्य कवि श्री पन्त का निरन्तर सहवास आपके काव्य और व्यक्तित्व दोनो के लिए श्रेयस्कर सिद्ध हुआ है। आपकी आत्मा की सहज काव्य-धारा में और भी गति आ गई है और गुटबन्दियों के राग-द्वेष से विलग आप चिन्तन और सृजन के जग में लीन हैं :

'एक हृदय की कायरता है
और दूसरी, छलना मन की,
इन दोनों के संग-सहारे,
चलती जाती गति जीवन की !'

नरेन्द्र की आत्मा की सरलता और माधुरी आपके बाह्य रूप में भी मानो प्रकट हुई है। आपको देखकर आपके कविता-संग्रह 'कर्णफूल' के प्रथम नामकरण 'सरल-सुमन' की याद आती है।

अपने जीवन के उषःकाल में जो नरेन्द्र ने गीत गाये थे, वह आज विस्मृत से हैं। 'शूलफूल' और 'कर्णफूल' की पुरानी प्रतियों में वे खो गये हैं। उन कोमल, सुकमार, गुलाबी गीतों से कवि को अब सन्तोष नहीं :

'खोलो, अवगुंठन खोलो !
प्यासे नयन भ्रमर-से आकुल,
कमलनयनि ! दर्शन को व्याकुल,
अधर अधीर मधुर चुम्बन को,
श्रवन तृषित कोकिल-कूजन को।
बोलो, मधुमयि, कुछ बोलो !
खोलो, अवगुंठन खोलो !'

संघर्ष की काल-रात्रि में प्रणय के मधुर छन्द खोकर अब समरभूमि से कवि ने 'प्रवासी के गीत' लिखे हैं :

'साँझ होते ही न जाने छा गई कैसी उदासी ?
क्या किसी की याद आई, ओ विरह-व्याकुल प्रवासी ?'

तरुण कवि की प्रेरणा स्वभावतः प्रणय, प्रकृति और शृङ्खला-बद्ध समाज में स्वाधीनता की ओर होती है। नरेन्द्र के अगणित गीत किसी अनजान प्रेयसी के रूप की खोज हैं :

'आएगी वह कौन लाज-सी
आज स्वर्ण-हंसों के रथ में ?
किसके लिए आज प्राची ने
बिछा दिये है पाटल पथ में ?'

'कौन, कौन, वह स्वप्नागंतुक,
जिसके पग-पायल की रुन-झुन
बजी आज मेरे अन्तर में,
हूँ अधीर जिसकी पग ध्वनि सुन ?'

उषःकाल का वह उल्लास अब समय की गति में खो गया और कवि का जीवन अथक पीड़ा का बन्दी बना है ।

'मधुमास स्वयं ही चला गया
आया जैसे वह अनायास !'

यौवन के प्रभात में कवि ने प्रकृति-बाला को भी रुचिर पल्लव भेंट किये । इन गीतों के रंग चटख और गहरे थे और रेखाएँ पुष्ट, दृढ़ हाथों से खिंची :

'देखा करता हूँ गंगा में उगता गुलाब-सा अरुण प्रात
यमुना की नीली लहरों में नहला तन, उठती नित्य रात !
गंगा-यमुना की लहरों में, कण-कण में मणि नयनाभिराम
बिखरा देती है साँझ हुए नारंगी-रंग की शान्त शाम !'

'स्वर्णिम मयूर-से नृत्य किया करते उपवन में गोल्डमोहर,
कुहका करती पिक छिप-छिप कर तरुओं में रत प्रत्येक प्रहर

भर जाती मीठी सौरभ से कड़वे नीमों की डाल-डाल
चलदल पर लद जाते असंख्य नव-दल-प्रवाल के जाल लाल !'

इन गीतों में बसन्त का मिठास और सौरभ था जो अब अदृश्यप्राय है :

'मधुमय स्वर से सिञ्चित मधुबन,
सुरभित नीम, नवल-दल पीपल,
मधु में बौरे आम मञ्जरित,
फैले द्रुम-द्रुम विद्रुम-से दल,'

× × ×

पिक-श्यामल मँडराते अलिदल !
मुह-मुह कुहु-कुहु कुहुकी कोयल !'

किन्तु आज तो कवि कहता है :

मैं मरघट का पीपल तरु हूँ
घड़ी-घड़ी यमदूत याम नित
घड़ी-घंट-(जिनमें सुधि का जल)—
बाँध रहे हैं तृषित कंठ में
करने आगत का उर शीतल,
पर क्या मेरी प्यास बुझेगी ?
मैं मरघट का पीपल तरु हूँ !'

फिर भी आप जब कभी गुन-गुना उठते हैं ;

'मेरा घर हो नदी किनारे ।'

अब भी फिर-फिर बसन्त आता है, किन्तु अब कवि का दृष्टिकोण कुछ भिन्न है। वह कोमलता और माधुरी का आँचल छोड़ सत्य और शक्ति की खोज में है :

'पतझर के दिन भी बीत चले,
पल्लव-पुष्पों से वृक्ष भरे।
यों ही मधु के हलकोरों से
हो जायेंगे फिर बाग हरे!'

× × ×

'पीपल की नंगी डालों पर
आ गईं पत्तियाँ लाल-लाल।
पुर जाती भरते घावों पर
जैसे हल्की मृदु लाल खाल!'

'नव शिशु की अविकच त्वचा-सदृश
खो देंगे पत्र मृदुल लाली,
कुछ हरितपीत, फिर हरितश्याम
होगी तरु की डाली-डाली!'

कवि अब प्रकृति का केवल रुपहला रूप ही नहीं देख रहा, वह प्रकृति में संघर्ष और पीड़ा का जन्म भी देखता है। इस प्रकार उसकी कल्पना अपनी परिधि बढ़ा रही है और नया बल उसके गीत में भर रहा है।

नरेन्द्र की कविता में, विशेषकर 'प्रवासी के गीतों' में अकथ पीड़ा भरी है। यद्यपि उसे क्षणभर के लिए ज्योति का भास

हुआ, किन्तु तुरन्त ही अन्धकार ने पथ मेट दिया। अब तो चारों ओर उसे निराशा ही दीखती है :

'क्या उस-सा ही कोई निराश, कोई उदास
होगा ऐसा विश्रान्त पथिक,
यह जीवन ही बन गया जिसे अविकल प्रवास!'

यह निराशा नरेन्द्र की कविता का ही नहीं, परन्तु आधुनिक काव्य-मात्र की आत्मा का लक्षण है। इतिहास के किसी युग में मनुष्य और जातियाँ अपनी प्रगति का मार्ग प्रशस्त देखते हैं, और उनके साहित्य में उल्लास भर जाता है। ऐसा युग ग्रीस में पैरीक्लीज के ऐथेन्स, एलिजबैथ के इंगलैण्ड और कालिदास के भारत में था। हिन्दी के कवियों ने भक्ति में अपनी आत्मा डुबा अपनी संस्कृति की रक्षा की थी। इस युग में संस्कृति की रक्षा कठिन दीख रही है, और मनुष्य को अन्धकार में हाथ मारा नहीं सूझ रहा; कवि विकल अपनी तन्त्री सँभालता है, किन्तु गीत उसका उठ नहीं पाता। कवि समाज से विलग नहीं, अतः समाज की पीड़ा उसके गीत में भर जाती है।

नरेन्द्र ने अपने वक्तव्य में इस निराशावाद का गम्भीर और मार्मिक विवेचन किया है :

'ब्रिटिश सत्ता के स्तम्भ उच्च राज-कर्मचारी, ऊँचे पेशेवाले (बड़े वकील, डाक्टर, इंजिनियर) थोक माल खरीदने और बेचनेवाले व्यवसायी और व्यापारी, राजा और नवाब, बड़े जमीदार और ताल्लुकेदार, ये सब आज के उच्च वर्ग में शामिल हैं। इनकी शिक्षा, संस्कार और जीवनचर्या इन्हें इस योग्य नहीं रहने देते कि ये हमारे साहित्य की ओर कृपा-कटाक्ष कर सकें। मध्यवर्ग, जिसमें बेकार शिक्षितों, कवियों और लेखकों की भी

गणना होनी चाहिये, के अन्तर्गत आदलती अहलकारों की श्रेणी से लेकर उच्च वर्ग की ओर ऊर्द्धमुख किन्तु अपने सौभाग्य के कारण अंशतः स्वयं सन्तुष्ट सफल सांसारिक आते हैं। स्पष्ट है कि इन पिछले सांसारिक जीवों के बीच साहित्यिकों के लिए कोई स्थान नहीं। तब क्या कवियों के इन्द्रधनुषी स्वप्नों और आध्यात्मिक आकाश-कुसुमों के गुणग्राहक अकिंचन, पद-दलित, प्राकृत जनता में मिलेंगे, जब कि हमारी जनता को गला घोंटनेवाली गरीबी और गुलामी के भार से साँस लेने तक की फ़ुरसत नहीं?...ऐसी अवस्था में कवियों का निराशावादी हो जाना स्वाभाविक था...जिनकी दृष्टि अन्तर्मुखी थी उन्हें सब 'हालोमैन' के रूप में दिखलाई पड़े और जिनकी प्रवृत्तियाँ बहिर्मुखी थीं, उनके सामने 'वेस्टलैण्ड' का प्रसार था।...'

नरेन्द्र स्वयं निराशावादी नहीं हैं। आप प्रगति में विश्वास करते हैं। 'कला के मंदिर का यह पुजारी प्रेम, सत्य, शिव और सुन्दर पर आक्रमण करनेवाले आततायी सर्पों के साथ आमरण संघर्ष में संलग्न है। यह आधुनिक 'लाकून' क्या अपनी और अपनी कविता की रक्षा कर सकेगा? यह निश्चित है कि जब तक वह व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की विषमताओं और उनसे प्रोत्साहन पाकर पैदा होनेवाले अन्तर के अविश्वास (भाग्यवाद) और दुःखवाद के दोनो विषधरों को तोड़ न डालेगा, तब तक वह अपने क्षयरोग का उपचार न कर सकेगा।'

नरेन्द्र के काव्य में युग की पीड़ा है, किन्तु उससे भी अधिक किसी व्यक्तिगत् पीड़ा ने 'प्रवासी के गीत' में कठिन अवसाद भर दिया है। सभी दिन 'मलिन ठीकरे-सा निष्प्राण' कवि नहीं था। 'प्रवासी के गीत' अधिकतर वियोग के गीत हैं, जो मनुष्य-जीवन के साथ लगे ही रहेंगे।

नरेन्द्र प्रगतिवादी हैं। आपका विश्वास है कि 'आज का संक्रांतिकालीन जीवन शाश्वत नहीं, केवल सामयिक है।' कवि को 'अपनी रक्षा करने के लिए सामाजिक और राजनीतिक प्रगति के साथ चलना होगा, दोनो क्षेत्रों में उसे क्रान्ति उपस्थित करने के लिए पूरा सहयोग देना होगा। एकाकी बने रह कर वह अपनी रक्षा न कर सकेगा।' आपकी 'प्रभातफेरी' उस क्रान्ति की पुकार है :

'आओ, हथकड़ियाँ तड़का दूँ, जागो रे नतशिर बन्दी !

उन निर्जीव शून्य श्वासों में
आज फूँक दूँ लो नवजीवन,
भर दूँ उनमें तूफानों का,
अगणित भूचालों का कंपन,

प्रलय-वाहिनी हों, स्वतंत्र हों, तेरी ये साँसें बन्दी।'

आपने 'विज्ञान', 'रूढ़िवाद', 'इतिहास', 'बबूल', 'वेश्या' आदि अनेक कविताएँ लिखी हैं। जिनमें जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण है और भविष्य को आशा का संदेश है। 'बबूल' कहता है :

'कंटकमय जीवन आजीवन
पर मैं निर्भय विश्वासी हूँ,
हूँ समर्थ, मैं सबल सनातन,
पर नित-नव बल अभिलाषी हूँ

सफल बनूँ, यदि बरसें काँटे नभ से शत-शत-धार।'

इस प्रकार जग-वाणी में नया ओज भर सकता है और

एक नये युग का जन्म, जहाँ दुःखदैन्य न हों! नहीं तो जीवन में इन बन्दी साँसों को लेते रहना निस्सार है। 'प्रयाग' नाम की कविता में कवि ने लिखा है:

'यह जीवन चंचल छाया है,
बदला करता प्रतिपल करवट,
मेरे प्रयाग की छाया में
पर अब तक जीवित अक्षयवट!
क्या इसके अजर पत्र पर चढ़
जीवन जीतेगा महाप्रलय?
कह, जीवन में क्षमता है यदि
तो तम से हो प्रकाश निर्भय!
'मैं भी फिर नित निर्भय खोजूँ
शाश्वत प्रकाश अक्षय जीवन,
निर्भय गाऊँ, मैं शान्त करूँ
इस मृत्यु-भीत जग का क्रन्दन!
है नये जन्म का नाम मृत्यु,
है नई शक्ति का नाम ह्रास,
है आदि अन्त का, अन्त आदि का
यों सब दिन क्रम-बद्ध ग्रास!'

इसी आशा से कवि का जीवन-दीप 'स्नेह-रहित भी टिम-टिमा रहा है।

नरेन्द्र के कोष में परिपाटी के काव्य की सभी निधि है : भाषा-सौष्ठव, रंगीन कल्पना, भाव-श्रोत। किन्तु इसके अतिरिक्त भी समाज की मर्मव्यथा से उनके गीत में नया बल आ रहा है। इसी कारण हम आपको भविष्य के बढ़ते कवि के रूप में देखते हैं।

आपकी भाषा का सहज मिठास हमें काव्य में सुगमता से नहीं मिलता। श्रीमती महादेवी वर्मा अवश्य किसी अनमोल साँचे में अपने शब्द गढ़ती हैं। 'पन्त' की क्लिष्ट वाणी, 'निराला' का ओज और शक्ति, भगवतीचरण वर्मा, 'नवीन' अथवा 'बच्चन' की उर्दू-भार से झुकी किन्तु सुष्ठ भाषा—इनमें अपना अलग आकर्षण है ; किन्तु यह सहज माधुरी तो स्वयं ही कविता का जीवन है :

'कब बीते दिन फिरे किसी के ?
लौटा कब बहता सरिता-जल ?
लहरों की मृदु थपक-ताल में
सुन लोरी तट-सा ही निश्चल,
सो जाऊँ फिर नदी किनारे !
मेरा घर हो नदी किनारे !'

आपके अनेक शब्द-चित्र पाठक की स्मृति पर लिख जाते हैं :

'पके जामुन-से रङ्ग की पाग
बाँधता लो आया आषाढ़ !'
'चढ़ लपटों के स्वर्ण गरुड़ पर
फैलेगी जागृति की ज्वाला !'

'पल्लव के रुचिर किरीट पहन—
आता अब भी ऋतुराज वहाँ ।'

अथवा— 'आयेगी वह कौन ताज-सी
आज स्वर्ण-हंसों के रथ में ?'

हिन्दी के सौभाग्य से अनेक व्यक्तिगत् निराशाओं और विपत्तियों की मार से भी इस तरुण कवि के कण्ठ का गीत-श्रोत सूखा नहीं, वरन् कुछ अधिक तरल ही हो गया है। काव्य के पिछले मील-स्तम्भों को भूल अब वह भविष्य का पथ खोज रहा है। उसके काव्य-प्राण में नवशक्ति भर रही है। उसका छन्द-मुक्त हो गया है; उसका नया प्रयास किसी हद तक प्रयोगात्मक है। कुण्डली मारे जो सर्प उसकी आत्मा पर जमा बैठा है, उसे वह तोड़ने की चिन्ता में लीन है। नरेन्द्र की बिल्कुल नयी कविता 'ज्येष्ठ का मध्याह्न' हमें कुछ ऐसा अनुमान देती है :

'मध्याह्न-काल ज्यों अहि विशाल
केन्द्र में सूर्य,
शोभित दिन-मणि से गर्वोन्नत ज्यों भीम भाल !'

उस अजगर की मणि-सी ही चमक इस कविता में भी है। शक्ति की ओर जाते हुए इस सुकुमार कवि का भविष्य हिन्दी संसार उत्सुकता से देख रहा है और इस आशा से कि उसकी वाणी में 'अगणित तूफान और भूचालों का कंपन' भर जावेगा।



'दिनकर'

हिन्दी के प्रगतिशील साहित्य में 'दिनकर' का अपना विशेष स्थान है। आपके काव्य ने प्राचीन परम्परा को त्याग समाज और संस्कृति के बिगड़ते रूप को पहचाना है, और इस भाव-जगत् में रहकर छन्द-रचना की है। 'दिनकर' की आत्मा को तरुण जीवन की उमड़ती उमंगों ने अपनी ओर खींचा है, किन्तु एक अकर्मण्य विलास-प्रिय संकुचित गुट के बोधगम्य छन्द आपने अधिक नहीं लिखे। यद्यपि आपकी कविता युग धर्म के अनुसार अन्तर्मुखी, गीत-प्राधान्य लिये दुख में डूब रही है, फिर भी आपकी चेतनता देश और समाज की परिस्थितियों से विमुख नहीं हो सकी है। इस करुण-क्रन्दन के प्रति 'दिनकर' ने विवश हो अपने कान नहीं बन्द कर लिये, यह उनकी विभूति है; और न 'दिनकर' के छन्द निर्द्वन्द ज्ञान-चेतना के फलस्वरूप 'गीत-गद्य' ही बन गये हैं। 'दिनकर' का काव्य किसी जीवित 'विस्यूवियस' का तरल, उष्ण लावा है और क्रान्ति की सूचना है।

'रेणुका' और 'हुंकार' अभी 'दिनकर', की दो रचनाएँ हिन्दी-संसार के सामने आई हैं। 'रसवन्ती' प्रकाशित होनेवाली है।

'हुंकार' में 'दिनकर' का परिचय इस प्रकार दिया गया है:

'दिनकर' की आँखों ने अभी कुल तीस बसन्त देखे हैं।

गंगा-किनारे के सेमरिया (ज़िला मुँगेर, बिहार) नामक किसानों के गाँव—घोर देहात—में जन्म लेकर भी पटना विश्व-विद्यालय का वह सम्माननीय स्नातक है।

उसके अपने विनोद के शब्दों में उसका आज का पेशा लोगों के बालिग़-नाबालिग़ होने का सार्टिफिकेट देता है, यानी वह सब-रजिस्ट्रार है।

× × ×

गेहुँआ रंग, छरहरा बदन, गुलाबी चेहरा—दिल में धधकता अंगारा, जिसपर इन्द्र-धनु खेल रहे!

अंगारा, जिस पर इन्द्र-धनु खेल रहे—दिनकर की आत्मा, रचना का यही संक्षिप्ततम परिचय है।'

'दिनकर' के काव्य की शुरूआत यौवन-सुलभ सौन्दर्योपासना से होती है। प्रकृति का सौन्दर्य, जीवन का शृंगार, रूप की प्यास :

'व्योम-कुंजों की सखी, अयि कल्पने!
आ उतर, हँस ले ज़रा बनफूल में।'

बाद में युवावस्था के खौलते रक्त ने कवि की वाणी में भैरव-स्वर भर दिया:

'चाँदनी की अलकों में गूँथ, छोड़ दूँ क्या अपने अरमान?
आह! कर दूँ कलियों कें बन्द, मधुर पीड़ाओं के वरदान'

'अमा-सन्ध्या', 'पाटलीपुत्र की गंगा', 'कोयल', 'निर्झरिणी', 'फूल', 'सायंचिन्ता', 'मिथिला में शरत्', 'बसन्त के नाम पर', 'फूलों के पूर्व-जन्म' आदि कविताएँ आपकी प्रकृति-साधना का प्रमाण हैं। अन्त 'हिमालय' शीर्षक कविता में आपकी तपस्या के सभी अणु मिल गये हैं—प्रकृति का गौरव और अखण्ड चिर-समाधि।

'मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

साकार, दिव्य, गौरव विराट ! पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल !

मेरी जननी के हिम-किरीट ! मेरे भारत के दिव्य भाल !'

बिहार-खण्ड का अमर अतीत इतिहास भी 'दिनकर' के काव्य में एक नज्ज़ारे के समान हमारी आँखों के सामने से गुज़र जाता है। पाटलीपुत्र, नालन्द, कपिलवस्तु और वैशाली का वैभव :

'चल अतीत की रंग-भूमि में, स्मृति-पंखों पर चढ़ अनजान।'

'हिमालय' के प्रति आप कहते हैं :

'सुख-सिन्धु; पंचनद, ब्रह्मपुत्र, गंगा, यमुना की अमिय धार,

जिस पुण्यभूमि की ओर बही, तेरी विगलित करुणा उदार।'

यह पर्वत किसी अमर-तपस्या में सतत लीन रहा और देश का वैभव लुट गया :

'पूछे, सिकता-कण से हिमपति, तेरा वह राज-स्थान कहाँ,

वन-वन स्वतंत्रता-दीप लिये, फिरनेवाला बलवान कहाँ ?

× × ×

वैशाली के भग्नावशेष से, पूछ लिच्छवी शान कहाँ,

ओ री उदास गंडकी ! बता विद्यापति के गान कहाँ ?'

इस प्रकार कवि की साधना उसे इतिहास का दिग्दर्शन कराती हुई वर्तमान के पलों तक ले आती है :

'तू मौन त्याग कर सिंहनाद, रे तपी ! आज तप का न काल

समयदूह की ओर सिसकते, मेरे गीत विकल धाये,

आज खोजते उन्हें बुलाने, वर्तमान के पल आये।'

भारत के उज्वल अतीत का आज की मलिन और धूमिल अवस्था से मुकाबिला कर, कवि का हृदय व्याकुल, आक्रान्त हो उठा है। उसके काव्य की पृष्ठभूमि में गाँधी की 'हुङ्कार' से जाग्रत भारत है। 'दिनकर' क्रमशः समाज के विकृत रूप की आलोचना वर्ग-संघर्ष के प्रतीकों से कर रहे हैं, किन्तु अभी आप इस दिशा में अधिक नहीं खुले। आपके गीतों में स्वतन्त्रता का सिंहनाद और साम्राज्यशाही को आप चिरशत्रु के रूप में देख रहे हैं। हमारी सामाजिक परिस्थितियों की भी आज यही माँग है।

कवि आज प्रलयङ्कर शंकर से फिर 'ताण्डव' नर्तन की अभिलाषा दिखाता है :

'नचे तीव्र गति भूमि कील पर, अट्टहास कर उठें धराधर,
उपटे अनल फटे ज्वालामुख, गरजे उथल-पुथल कर सागर,
गिरे दुर्ग जड़ता का ऐसा, प्रलय बुला दो प्रलयंकर।'

आप क्रान्ति का विश्व-व्यापी रूप देख रहे हैं। अन्य दलित देशों को जो सभ्यता का पाठ साम्राज्यशाही सिखा रही है उसका वर्णन हमें आपके काव्य में मिलता है :

शोणित से रंग रही शुभ्र पट, संस्कृति निठुर लिये करवालें,
जला रही निज सिंह-पौर पर, दलित-दीन की अस्थि-मशालें।

'त्रिपथगा' क्रान्ति का चित्र है। क्रान्ति को आप आज विराट रूप में देखते हैं। किसी भी ओर से वह निकल जायगी। क्रान्ति का बहुत प्रभावशाली शब्द-चित्र आपने खींचा है :

'मेरे मस्तक के छत्र-मुकुट बसु-काल-सर्पिणी के शत फन,
मुझ चिर कुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रुधिर-चन्दन,

आँजा करती हूँ चिता-धूम का, दृग में अन्ध-तिमिर-अन्जन,
संहार-लपट का चीर पहन नाचा करती मैं छूम-छनन ।'

× × ×

'पायल की पहली झमक, सृष्टि में कोलाहल छा जाता है,
पड़ते जिस ओर चरण मेरे, भूगोल उधर दब जाता है ।'

'दिनकर' को दलित दुखियों का कवि कह सकते हैं क्योंकि उन्हीं की दुर्दशा देख कवि विचलित हृदय 'हुङ्कार' कर उठा है :

'वैभव के बल से जब समाज के, पाप-पुण्य बन जाते हैं,
धन-हीन पुण्य को स्पृश्य नहीं, जब ईश्वर भी कर पाते हैं ।'

× × ×

'श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं,
युवती के लज्जा-वसन बेंच, जब व्याज चुकाये जाते हैं,
मालिक जब तेल-फुलेलों पर, पानी-सा द्रव्य बहाते हैं,
पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमन्त्रण ।'

इसी कारण 'दिनकर' के काव्य में विषाद का एक कठिन वातावरण बन गया है, यद्यपि कवि ने विजयोल्लास में उसे भुलाने का प्रयत्न किया है :

'मंज़िल दूर नहीं अपनी, दुख का बोझा ढोनेवाले,
जागरूक की जय निश्चित है हार चुके सोनेवाले ।'

निराशावाद के बादल हिन्दी-काव्य-संसार पर इतने जोर से घिरे हैं कि अन्धकार में कवि को हाथ-मारा नहीं सूझता ।

'दिनकर' की उजागर कल्पना ने दूर आकाश में बादलों को फटता देख लिया है, किन्तु फिर भी अपने व्यथित हृदय का हाहाकार वह शान्त नहीं कर सका है :

'उर में दाह, कण्ठ में ज्वाला, सम्मुख यह प्रभु का मरुथल है,
जहाँ पथिक जल की झाँकी में, एक बूँद के लिये विकल है !'

× × ×

'रह-रह पंखहीन खग-सा मैं, गिर पड़ता भू की हलचल में ;
झटिका एक बहा ले जाती, स्वप्न-राज्य आँसू के जल में ;

× × ×

'विभव-स्वप्न से दूर भूमि पर, यह दुखमय संसार कुमारी !
खलिहानों में जहाँ मचा करता, है हाहाकार, कुमारी !'

'नई दिल्ली' में कवि फिर अपने अतीत सपनों को याद करता है और आज की गिरी दशा पर आँसू बहाता है :

'वैभव की दीवानी दिल्ली, कृषक-मेघ की रानी दिल्ली !
अनाचार, अपमान, व्यंग की, चुभती हुई कहानी दिल्ली !'

× × ×

'ज़रा गिरा ले घूँघट अपना, और याद कर वह सुख-सपना,
नूरजहाँ की प्रेम-व्यथा में, दीवाने सलीम का तपना ;
गुम्बज पर प्रेमिका-कपोती, के पीछे कपोत का उड़ना,
जीवन की आनन्द-घड़ी में ज़न्नत की परियों का जुड़ना ।'

कठोर, क्रूर काल ने कवि के हृदय में यह व्यथा भर दी है। किसी युग और काल में वह भी रूप-जगत् का उपासक होता। अब भी जग के शान्त, स्निग्ध, अकिंचन रूप की झलक हमें उसके गीत में मिल जाती है। इसे हम भविष्य की झाँकी भ कह सकते हैं :

'स्वर्णाञ्चला अहा! खेतों में, उतरी संध्या श्याम परी,
रोमन्थन करती गायें, आ रहीं रौंदती घास हरी,
घर-घर से उठ रहा धुआँ, जलते चूल्हे बारी-बारी,
चौपालों में कृषक बैठ गाते, कहँ अटके बनवारी,
पनघट से आ रही, पीतवसना युवती सुकुमार,
किसी भाँति ढोती गागर, यौवन का दुर्वह भार,
बनूँगी मैं कवि, इसकी माँग, कलस, काजल, सिन्दूर, सुहाग,
वन-तुलसी की गंध लिये हलकी पुरवैया आती है,
मन्दिर की घंटा-ध्वनि, युग-युग का सन्देश सुनाती है,
टिमटिम दीपक के प्रकाश में, पढ़ते निज पोथी शिशुगण,
परदेशी की प्रिया बैठ गाती यह विरह-गीत उन्मन।' आदि

ग्राम्य-जग की विभूति कवि ने सँजो-सँजोकर इस गीत में रखी है। यह शान्ति और स्निग्ध सौम्यता आज ग्राम-देश से कोसों दूर है। प्रबल बड़वानल के उद्‌गारों से विलोड़ित महोदधि का कम्पन आज कवि के गीतों में भर रहा है। एक अनन्य शक्ति, तेज और ज्वाला उसकी कविता की निधि है। क्रान्ति-सी उमड़ती हुई राष्ट्रीय सेना का वह अगुआ गीतकार है। अदम्य

गति उसके पैरों में भर रही है। अपना 'चाँदी का शंख' उठा वह भैरव नाद करता है :

'फेंकता हूँ, लो तोड़-मरोड़, अरी निष्ठुरे ! वीन के तार ;
उठा चाँदी का उज्ज्वल शंख, फूँकता हूँ भैरव-हुंकार ।'

यह आशा का चिह्न है, क्योंकि जिस समाज में कलाकार रूप और शब्द-विलास छोड़ जीवन की पुकार सुन रहे हैं, वही साहित्य और समाज बलिष्ट है। विलास में लिप्त संस्कृति समाज में घुन लगने के समान है।



शान्तिप्रिय द्विवेदी

पिछले वर्षों में हिन्दी-साहित्य बहुत वेग से आगे बढ़ा है और सभी क्षेत्रों में आशातीत उन्नति हुई है किन्तु अभी हिन्दी का वातावरण आलोचना के अनुकूल नहीं बन रहा। आलोचना सत्य की खोज है। पक्षपात, घात-प्रतिघात से परे। किन्तु हिन्दी आलोचना अब भी सिद्धान्त को भूल, व्यक्ति का मुँह देख कर चलती है।

यह स्वाभाविक है, क्योंकि काव्य-रचना के बाद आलोचना शुरू होती है और हिन्दी का आधुनिक युग अभी रचनात्मक-साहित्य और विशेषकर काव्य-साधना में लीन है।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि हिन्दी में उच्च-कोटि के आलोचक पैदा नहीं हो रहे। हिन्दी आलोचना के पथ-पदर्शक महारथी साहित्यकार हो चुके हैं, जिनमें हम स्व० महावीरप्रसाद द्विवेदी, बा० श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु और पं० रामचन्द्र शुक्ल को गिनते हैं। किन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि जिस गति से कविता, कहानी और उपन्यास का क्षेत्र विस्तृत हो रहा है, आलोचना का नहीं। इसका कारण हम ऊपर बता चुके हैं।

हिन्दी आलोचना में एक गम्भीर परिवर्तन भी हुआ है। द्विवेदी-युग के आलोचक शास्त्रीय आलोचना करते थे। उस परम-पाण्डित्यपूर्ण विवेचन में एक स्थूल काया अवश्य थी, किन्तु रस अथवा भाव-जगत् की आत्मा नहीं। आज हिन्दी आलोचना में जो सहृदय साहित्यिक काम कर रहे हैं उनमें

श्री० हजारीप्रसाद द्विवेदी और श्रीशान्तिप्रिय द्विवेदी विशेष उल्लेखनीय हैं। इस प्रकार हिन्दी आलोचना का यह दूसरा 'द्विवेदी-युग' शुरू होता है।

शान्तिप्रिय द्विवेदी बहुत मुख्तसर से-आदमी हैं। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में आप 'लाइट-वेट चेम्पियन' हैं। आपके जीवन में भाग्य ने पीड़ा कूट-कूट कर भरी है। शायद श्री महादेवीजी वर्मा के काव्य के प्रति आपका विशेष मोह इस कारण भी है। असंपन्नता के साथ-साथ वज्र-प्रहार पिछले वर्ष आपके ऊपर हुआ जब आपकी बड़ी बहन स्वर्गता हुई। आपने अपने जीवन-सम्बन्धी अनेक निबन्ध लिखे हैं जिनका संग्रह 'जीवन-यात्रा' नाम से निकल चुका है। 'प्रवास' शीर्षक एक निबन्ध 'साहित्यिकी' में भी है। और भी आपके साहित्यिक लेखों में आत्मकथात्मक पुट मिलता है; जैसे 'सांस्कृतिक कवि मैथिलीशरण' में। शायद कभी आप अपनी 'जीवन-कथा' लिखें। इस क्षेत्र में भी हिन्दी का साहित्य सीमित है। 'कुल्ली भाट' इस दिशा में एक सराहनीय प्रयास हुआ है। अंग्रेजी में तो नित्यप्रति आत्मकथा निकलती हैं।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी की साहित्यिक प्रगति के पग हैं १—'हमारे साहित्य-निर्माता'; २—'कवि और काव्य'; ३—'साहित्यिकी' ४—'सञ्चारिणी'। यह पुस्तकें हिन्दी के आधुनिक-साहित्य का हमें सिंहावलोकन कराती हैं। इन पुस्तकों में लेखक के कुछ मौलिक गुण अनायास ही झलक जाते हैं; वे हैं द्विवेदीजी की आलोचना-पृष्ठ-भूमि में एक अभिनव दार्शनिकता, सहृदयता, भावुकता और अनुभूति। आप आलोचना के क्षेत्र में कवि और दार्शनिक हैं और अपनी अनुभूति से सहज ही रस अर्चन कर लेते हैं। आनुधिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास भी

इन निबन्धों को कह सकते हैं, यद्यपि यह इतिहास सरसरी तौर का है।

इन निबन्धों का एक निजी गुण इनकी सुष्ट सौरभमयी भाषा है जिसे लेखक ने साचों में ढाल-ढाल कर गढ़ा है। अक्सर यह भाषा गद्य-काव्य की परिधि में पहुँची है और इसके शब्द-चित्रों में नूतनता और मार्मिकता के गुण हैं। संस्कृत के भार से तो यह बोझिल हैं ही, किन्तु कहीं-कहीं अंग्रेजी के शब्दों का भार भी इसे दबाये है। इसे दोष कह सकते हैं। पन्तजी की 'युगवाणी' के प्रति आपका एक कथन है :

'जिस गद्य-भाषा में पन्त नवीन मानवता के विचार दे रहे हैं, उन विचारों में शुष्क मैटर आफ फैक्ट तो है किन्तु कला का फ्लो और फ़ोर्स नहीं।'

अंग्रेजी के शब्दों का बहिष्कार हो इसके हम पक्ष में नहीं किन्तु इस प्रकार की बेतुकी बात भी ठीक नहीं।

द्विवेदीजी के विचारों की पृष्ठ-भूमि में विश्व-साहित्य का बहुत कुछ अध्ययन और मनन है, अध्ययन से भी अधिक मनन। टॉल्सटॉय, रविबाबू और शरद् की कला से सहचर्य्य में आपके विचार मँझे और परिपक्व हुए हैं। आप कला के साधक हैं किन्तु कला की पुकार को मानवता से पृथक नहीं समझते। आपकी सहृदयता ने दोनो में एक सामजस्य पा लिया है और इसी कारणवश आप गुण-विवेचन में अधिक लीन हैं, दोषों की छानबीन में नहीं।

'कवि और काव्य' में आपने कला और काव्य के रूप की सरस मीमांसा की है, बाद में पुरातन और नूतन काव्य की विवेचना। 'व्रजभाषा का माधुर्य-विलास', 'भक्तिकाल की अन्तश्चेतना', 'प्राचीन हिन्दी कविता', 'मीरा का तन्मय संगीत', 'व्रज-

भाषा के अन्तिम प्रतिनिधि (रत्नाकर)' आदि घाटों को पार करती हुई आपकी आलोचना-सरिता भारतेन्दु-साहित्य, 'आधुनिक हिन्दी कविता', 'औपन्यासिका', 'कविता और कहानी' 'छायावाद का उत्कर्ष, 'नवीन काव्य-क्षेत्र में महिलाएँ', 'समालोचना की प्रगति', 'हमारे साहित्य का भविष्य' आदि मंजिलों का हमें दर्शन कराती है। इस प्रकार हिन्दी के नवीन और पुरातन साहित्य की रूप-रेखा का एक दिग्दर्शन हमें हो जाता है।

'साहित्यिकी' और 'सञ्चारिणी' में नवीन हिन्दी कविता का चित्र हमें और भी पुष्ट रेखाओं में मिलता है। 'सञ्चारिणी' तो नयी कविता के कल तक के इतिहास यानी 'युगवाणी' के पन्त से हमें परिचित कराती है। इन निबन्धों में द्विवेदीजी ने नवीन हिन्दी कविता का काल-विभाग किया है, कवियों और कवियित्रियों का परिचय दिया है और काव्य की आत्मा का सूक्ष्म दार्शनिक निरूपण किया है। यह विशद विस्तृत और सूक्ष्मदर्शी विवेचना आलोचक के रूप में आपका महत् कार्य है।

'छायावाद' का काल-विभाग आपने इस प्रकार किया है: १—प्रसाद की काव्य-प्रतिभा (छायावाद की आरम्भिका), २—माखनलाल, पन्त, 'निराला', महादेवी, रामकुमार, 'नवीन' इत्यादि मुक्तक विकास, ३—गीतिकाव्य, ४—पन्त का 'युगान्त'-चिन्तन।

'सम्प्रति गीतिकाव्य की दशा में दो स्कूल प्रचलित हुए महादेवी-स्कूल, २. 'निराला-स्कूल।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी-साहित्य की नवीनतम धाराओं से परिचय रखकर द्विवेदीजी आलोचना क्षेत्र में बढ़ रहे हैं। यह शुभ चिन्ह है। आप कला के पार्श्व में 'मानवता' का स्थान पहचान रहे हैं और इसी कारण जो साहित्य और कला

का कायाकल्प हो रहा है। उसके प्रति आपकी निरी उपेक्षा नहीं। और इसी कारण द्विवेदी-युग के आलोचकों ने 'छायावाद' को पहचानने में जो गल्ती की थी—और जीवन-तरंगों से विमुख किताबी-कीड़े आलोचक जो गल्ती दुहरा रहे हैं, उससे आप बच जायेंगे।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने शास्त्रीय आलोचना का अंचल छोड़ अपने निजी अध्ययन, मनन, अनुभव और परख से जो नवीन साहित्य की गंम्भीर विवेचना की है, वही हिन्दी आलोचना में आपका बड़ा काम है। आपने आलोचना-शास्त्र को तो कुछ नये अस्त्र नहीं दिये, किन्तु हिन्दी आलोचकों को अवश्य एक नवीन पद्धति और गति-विधि सिखाई है। हिन्दी आलोचना को आपने नवीन दृष्टि दी है। नीरस, निर्जीव शास्त्रियों का दृष्टिकोण त्याग आपने आलोचना को सरस, सजीव और मर्मस्पर्शी बनाया है।

पं० रामचन्द्र शुक्ल को ध्यान में रखते हुए श्री रामकुमार वर्मा आपके प्रति कहते हैं : 'कुँए की गहराई की अपेक्षा सरोवर का यथोचित गहराई लिये हुए, समतल और विस्तार इन लेखों में मिलेगा।' शायद इस मंतव्य से किसी का विरोध न हो !

●

प्रगति क्यों ?

[१]

हिन्दी में इधर प्रगतिशील साहित्य की कुछ चर्चा चली है और हमारे साहित्यकार अपनी निद्रा त्याग आँख मलकर इस नये संसार को विस्मित देखते हैं। जिस पुराने ढर्रे पर अब तक साहित्य चलता आ रहा है, उसे वह छोड़ना नहीं चाहते। समाज में कौन-सी प्रलयकारिणी शक्तियाँ घुमड़ रही हैं, वे जानना नहीं चाहते। न वे जीवन और साहित्य के पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध को समझना चाहते हैं। वे अपने हाथीदाँत के मीनारों में बन्द धरती से दूर कल्पना के स्वप्न देखने में तल्लीन हैं। और उसी में सुखी हैं।

वे आँख मूँद, ब्रह्मरन्ध्र में अपने प्राण खींच निर्वाण का सुख प्राप्त करते हैं। वे कहते हैं, सुख-दुःख सब मन की बात है। न कोई छोटा है न बड़ा; न राजा न रंक। जीवन की कठोर वास्तविकता से मुख मोड़ वह हवा में रहते हैं।

इस देश के लिए यह विचार-प्रणाली कुछ नहीं। अगणित वर्षों से जीवन से विमुख हमने तप-साधना की है। उसका फल आज हमारे देश की यह दारुण अवस्था है।

जब हम जीवन के कठिन सत्य को निर्मम शब्दों में प्रकट करते हैं, तो कहा जाता है कि हम समय को युगों में बाँटकर और मनुष्य को श्रेणियों में विभक्त कर देखते हैं। साहित्य तो मनुष्यमात्र के लिए युगधर्म से परे होता है।

कालिदास की रचना लीजिये। वह समय और परिवर्तन से दूर मनुष्य की चिरन्तर अनुभूतियों का प्रदर्शन है। फिर भी क्या कालिदास के युग और समाज की उनके साहित्य में स्पष्ट झलक नहीं? वह राजसी विलास और वैभव, और राजत्व के प्रति अटूट अगाध श्रद्धा।

जीवित साहित्य में हमें अवश्य ही तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब मिलेगा! जीवन से विलग साहित्य जी नहीं सकता।

हम इस बात से सन्तुष्ट नहीं कि सुख-दुःख मन की बात है। हम मनुष्य की मौलिक परिस्थितियों में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन चाहते हैं। तभी हमारी संस्कृति आगे बढ़ सकती है। जो कलाकार हमारा विरोध करते हैं, वे शोषक वर्ग के हिमायती बन जाते हैं और प्रतिक्रियावादियों में उनकी गणना होगी।

वास्तव में आजकल की संस्कृति मध्य-वर्ग की निर्मित वस्तु है। यदि मनुष्य के बीच जो दीवारें खड़ी हैं, वे ढह गईं तो वर्तमान परिस्थितियों में मध्य-वर्ग के संकीर्ण स्वार्थों की क्षति होगी। इसी कारण मध्य-वर्ग के लेखक ऐसे आन्दोलन के प्रति असहिष्णु हो जाते हैं। क्योंकि, कहते हैं मनुष्य का मर्म-स्थान उसकी जेब है; वहीं उसे कठिनतम आघात पहुँचता है।

हम देखते हैं कि जीवन के कटु सत्य में डूबा साहित्य नई शक्ति और स्फूर्ति धारण कर लेता है। वह तीर की भाँति सीधा हमारा मर्म-स्पर्श करता है। उदाहरण के लिए श्री० भगवती-चरण वर्मा की नई कविता 'भैंसागाड़ी' लीजिये। इस कविता में केवल ग्राम की दीनता और नगर की क्रूरता का वर्णन है। इस कविता के पीछे कोई वैज्ञानिक ठोस विवेचना नहीं। गाँव में सामन्तशाही का राज्य है; नगर में पूजीवाद का। गाँव और

नगर दोनो ही जगह शोषित और शोषक वर्ग हैं। फिर भी गाँव की दरिद्रता वर्णन करने में यह कविता नई शक्ति से भर गई है और केवल व्यक्तिगत आवेश से भरे 'लिरिक' से बहुत आगे है।

हमारे सामने पहला सवाल आज़ादी की लड़ाई का है, दूसरा ग़रीबी का। हमारा राष्ट्रीय जीवन एक ओर साम्राज्यवाद से मोर्चा ले रहा है, दूसरी ओर पूँजीवाद और सामन्तवाद से। हम यह नहीं कहते कि कला प्रचारवादी हो, किन्तु देश के जीवन से विलग साहित्य की कल्पना हम नहीं कर सकते।

हमारे जीवन में जो संघर्ष आज इस विराट रूप में व्यापक है, उसकी प्रतिध्वनि हमारे साहित्य में आयेगी ही।

जीवन विकासमय है। निरन्तर हम उन्नति कर रहे हैं। जो साहित्यकार जीवन की पास से छान-बीनकर उन्नतिपथ पर हैं, उन्हें हम प्रगतिशील कहते हैं। वे जानते हैं कि एक युग का अन्त हो रहा है, और दूसरा जन्म रहा है। उनके नेत्र भविष्य की ओर हैं, जो कलाकार जीवन-शक्ति का प्रवाह न समझकर पुरानी जराजीर्ण संस्थाओं और रूढ़ियों का पक्षपात करते हैं, उन्हें हम प्रतिक्रियावादी समझते हैं।

हम चाहते हैं कि जीवन की जो शक्तियाँ प्रगति की ओर हैं, उनका साथ हमारा साहित्य दे।

[२]

कुछ वर्ष पहले लखनऊ से प्रगतिशील साहित्य के निर्माण हेतु एक छोटे-से दल ने अपनी आवाज़ उठाई थी। अब वह आवाज़ कुछ बल पकड़ रही है। इस नये आन्दोलन का क्या मतलब है ?

देश में उठती हुई क्रान्ति की भावनाओं के साथ साहित्यकारों को मिलाना इस दल का ध्येय था। कलाकार स्वभाव से ही प्रगति-हीन साहित्य की हम कल्पना भी नहीं कर सकते। फिर भी कभी-कभी रूढ़ि-ग्रस्त समाज के उलझे तारों में फँस कर कलाकार निर्जीव साहित्य-रचना में अपनी शक्तियाँ खो सकता है। इसी से समाज की प्रगति के नियमों को समझना उसका कर्त्तव्य हो जाता है।

कला जीवन के साथ बँधी है। जीवन से नाता तोड़ कर कला अधिक नहीं बढ़ सकती। कभी-कभी कलाकार जीवन से व्यथित होकर कल्पना के जग में भागने का प्रयत्न करता है, जहाँ उसे कुछ विश्राम मिले :

'ले चल मुझे भुलावा देकर,
मेरे नाविक ! धीरे-धीरे।
जिस निर्जन में सागर लहरी,
अम्बर के कानों में गहरी।
निश्छल प्रेम-कथा कहती हो,
तज कोलाहल की अवनि रे।'

अब अनेक वर्ष से हिन्दी काव्य इस शान्त पथ पर चल रहा है।

मनुष्य निरन्तर आगे बढ़ रहा है। जीवन और विकास के यह अटूट नियम हैं। किन्तु कल्पना के जग में बिहार करने-वाला यह साहित्य व्यथित नेत्रों से मुड़-मुड़ कर अतीत की ओर ही देखता है :

'कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन,
वह सुवर्ण का काल ?
भूतियों का दिगन्त छवि-जाल;
ज्योति-चुम्बित जगती का भाल।'

हमारी कला का यह पराजय भाव विकास के नियमों की अनभिज्ञता के कारण है। इसी प्रकार हमारे सर्वश्रेष्ठ नाट्यकार 'प्रसाद' ने इतिहास का आंचल बालक की भांति पकड़ रखा था। उसे छोड़ते ही वह असहाय हो जाते थे। भविष्य की ओर केवल एकाध बार ही उन्होंने मुड़कर कनखियों से देखा।

हमारा साहित्य मध्य वर्ग की कृति है। जनसाधारण के जीवन में हम सर्वथा विमुख हैं। प्रगति के नियमों का तर्क पूँजीवाद के साथ-साथ पुरातनशाही और मध्य वर्ग की भी जड़ काट रहा है। विनाश की यह पीड़ा हमारे मध्य वर्ग की कला में प्रतिबिम्बित है।

जन-समाज से हमारे कलाकार दूर हैं। उसकी बढ़ती हुई आशाओं का हमारे साहित्य में अभी तक कोई स्थान नहीं रहा—प्रेमचन्द की रचना को छोड़ कर। प्रेमचन्द अधिकतर गाँवों में रहे थे। एक प्रकार से किसानों के जीवन में वे घुल मिल गये थे। उन्हीं किसानों के जीवन का अन्तर्नाद उनकी रचना में है। आज भारतीय किसान और मजदूर के जीवन में विजयोल्लास है। इस विजय की ध्वनि हमारे साहित्य में अभी नहीं आई।

मध्य वर्ग का यह निर्मित साहित्य शायद समय के साथ एकदम ही लुप्त न हो जाय। भविष्य के लिए इस संस्कृति के

शायद यही भग्नावशेष रह जावें। किन्तु हम बीती हुई कल को भूल कर आनेवाली कल की बात सोचना चाहते हैं। तभी हमारे साहित्य में अधिक से अधिक बल आवेगा और हम कह सकेंगे।

'है आज भरा जीवन मुझमें,
है आज भरी मेरी गागर।'

हिन्दी के आधुनिक काव्य में जीवन के प्रति उपेक्षा-भाव है। किसी समय काव्य क्रान्तकारी था। सदियों से एक लीक में फँसा कविता को इन कवियों ने उबारा और उसे नया बाना पहिनाया। 'पन्त', 'प्रसाद' 'निराला' और महादेवी वर्मा ने हिन्दी काव्य को नया जीवन दान दिया। अब हमें फिर आशंका होती है कि हमारे कवि पुरानी लकीर ही न पीटते रहें।

पन्त की कला का आज पुनर्जन्म हो रहा है। समाज की अन्तर्शक्तियों को समझ कर आप कविता लिख रहे हैं। किन्तु यह कविता आपके मस्तिष्क की उपज है; आपके हृदय की पुकार नहीं। और भी क्रान्तिकारी शक्तियाँ हिन्दी-जगत में आगे बढ़ रही हैं—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भगवतीचरण वर्मा, 'अज्ञेय', 'दिनकर', 'बच्चन'। इन्होंने रूढ़ियों के प्रति प्रबल विरोध-भाव धारण किया है और हिंदी-साहित्य को नई विचार-धाराओं की ओर अग्रसर किया है।

आज हमारे देश में ही नहीं, वरन् सारे संसार में समाज की शक्तियाँ दो दलों में बँट गई हैं। हम बीच में निश्चल खड़े नहीं रह सकते, इस लोमहर्षण युग में कलाकार शान्ति के मीठे सपने देखता हुआ अपनी कला को जीवित नहीं रख सकता।

Somme की भयंकर युद्ध-भूमि में तितलियों का अस्तित्व कितने दिन रहेगा!

आज कलाकार को अपने विचार सुलझाने ही होंगे। क्या वह धनकुबेरों और पूँजीवाद की ओर अपनी शक्तियों का प्रयोग करेगा, अथवा भूखी, नंगी जन-समाज की ओर? या वह मौन धारण कर अपना उमड़ा गीत कण्ठ में ही सुखा देगा? हमारे देखते-देखते ही प्रलय के बादल समीप आ रहे हैं। हम चुप कब तक रह सकते हैं?



हिन्दी में प्रगतिवाद

आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास भारतेन्दु के साथ शुरू होता है। भारतेन्दु की रचना में हम मध्य युग के झुटपुटे आलोक से निकल वर्तमान के प्रकाश में आते हैं। इस युग में हिन्दी ने अपना कलेवर युगधर्म के अनुकूल बदला। हिन्दी गद्य का निर्माण यहीं से शुरू होता है और मध्य युग की संस्कृति से मुड़कर हिन्दी-काव्य ने भी अपना रुख़ वर्तमान की ओर पलटा।

अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत अभी भारतीय समाज और संस्कृति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। नये आविष्कार और जीवन के प्रति एक बुद्धिवादी दृष्टिकोण ब्रिटिश सत्ता के चरम-चिह्न हमारे बीच रहेंगे। अंग्रेज़ी और फिर भारतीय पूँजीवाद की मदद से सामन्त-प्रथा को भी गहरा धक्का लगा।

किन्तु सन् '५७ से ही भारत में ब्रिटिश सत्ता के प्रति असंतोष रहा है। मुग़ल शासन और ब्रिटिश शासन में यह अन्तर था कि मुग़ल भारत में बस गये थे। मुग़ल संस्कृति और किसी भी देश की संस्कृति से बिलग भारतीय संस्कृति थी। किन्तु अंग्रेज भारत के लिए सदैव विदेशी रहे। उनकी आँख हमेशा इगलैण्ड पर लगी रहती है।

यदि साहित्य जीवन का दर्पण है तो जीवन की सभी भावनाओं का यहाँ प्रतिबिम्ब मिलेगा। भारतेन्दु की कृति में अंग्रेजी शासन के प्रति उत्साह है, क्योंकि भारतीय समाज

को नये शासक वर्ग ने एक बुद्धिवादी संस्कृति के सपर्क में लाकर नया जन्म दिया। साथ ही राजनैतिक दासत्व के प्रति यहाँ विरोध-भाव भी है। भारतेन्दु का नाटक 'भारत दुर्दशा' देश की जागृति का प्रथम चिह्न है।

'रोवहु सब मिलि कै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
सबके पहिले जेहि ईश्वर धन बल दीनो।
सबके पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो॥
सबके पहिले जो रूप रङ्ग रस भीनो।
सबके पहिले विद्याफल निज गहि लीनो॥
अब सबके पीछे सोई परत लखाई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥'

× × ×

'अँगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चलि जात इहै अति ख्वारी॥
ताहू पै मँहगी काल रोग बिस्तारी।
दिन-दिन दूने दुख ईश देत हा हा री॥
सबके ऊपर टिक्कस की आफत आई।
हा हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥'

भारतेन्दु के अन्य समकालीन कवियों में भी इस जागृति के लक्षण प्रकट हुए हैं, श्री बदरीनारायण चौधरी, श्री प्रताप-

नारायण मिश्र, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' आदि। बंग-भंग के कारण पूरे देश में बिजली-सी दौड़ गई। इसी समय बंकिम बाबू ने अपने क्रान्तिकारी उपन्यास लिखे और 'वन्देमातरम्' गीत की रचना की। हिन्दी के कवियों ने हास्य की शरण ली। श्री बालमुकुन्द गुप्त ने 'भारतमित्र' में अंग्रेजी सरकार बदलने पर लिखा :—

'टोरी जायें, लिबरल आयें। भारतवासी धूम मचायें॥
जैसे लिबरल वैसे टोरी। जो परनाला वो ही मोरी॥ होली...'

हिन्दी के प्रगतिशील साहित्य में अगला क़दम 'भारत-भारती' था। इस पुस्तक का हिन्दी संसार में खूब प्रचार हुआ और पहले सत्याग्रह आन्दोलन के समय तो यह तरुण देश-भक्तों की बाइबिल-सी बन गई। श्री मैथिलीशरण गुप्त की कविता पहले से अब बहुत निखर चुकी है, किन्तु 'भारत-भारती' की लोकप्रियता उनकी अन्य किसी पुस्तक को अब तक नहीं मिली। 'मातृभूमि' का आपने कितना सुन्दर चित्र खींचा है :

'नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है।
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है॥
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मण्डन हैं।
बन्दीजन खगवृन्द, शेषफन सिंहासन हैं॥
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

× × ×

निर्मल तेरा नीर अमृत के सम है।
शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन हर लेता श्रम है ॥
ऋतुओं का विविध दृश्ययुत अद्भुत् क्रम है।
हरियाली का फ़र्श नहीं मख़मल से कम है ॥
शुचि सुधा सींचता रात में तुझ पर चन्द्र-प्रकाश है।
है मातृभूमि ! दिन में तरणि करता तम का नाश है ॥
सुरभित, सुन्दर, सुखद, सुमन तुझ पर खिलते हैं।
भाँति-भाँति के सरस सुधोपम फल मिलते हैं ॥
औषधियाँ हैं प्राप्त एक से एक निराली।
खानें शोभित कहीं धातु वर रत्नोंवाली ॥
जो आवश्यक होते हमें मिलते सभी पदार्थ हैं।
हे मातृभूमि ! वसुधा, धरा तेरा नाम यथार्थ है ॥
'दीख रही है कहीं दूर तक शैल-श्रेणी,
कहीं घनावलि बनी है तेरी वेणी ॥
नदियाँ पैर पखार रही हैं बनकर चेरी।
पुष्पों से तरु-राजि कर रही पूजा तेरी ॥
मृदु मलय-वायु मानो तुझे चन्दन चारु चढ़ा रही।
हे मातृभूमि ! किसका न तू सात्त्विक भाव बढा रही ॥'

गांधीजी के सत्याग्रह-आन्दोलन का देश के जीवन पर अभूतपूर्व प्रभाव पड़ा। अनेक लेख और कवि भी इस तूफान में बह गये। इनमें अग्रगण्य प्रेमचन्द, 'एक भारतीय आत्मा',

'नवीन' और श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान हैं, किन्तु अधिकतर हिन्दी के कवि और लेखक जीवन से मुख मोड़कर अनन्त को अपना राग सुनाने लगे। यही हिन्दी कविता का छायावाद है :

'ले चल मुझे भुलावा देकर, मेरे नाविक ! धीरे-धीरे।'

स्व० प्रेमचन्द ने दृढ़ हाथों से साहित्य का रुख़ जीवन की ओर पलटा। भारत की ग्रामीण और नागरिक समाज-योजना की आपने गम्भीर और मार्मिक विवेचना की। समाज के शोषक और शोषित वर्गों की पहेली को आपने समझा और इन समस्याओं का अपनी कहानियों में विशद चित्रण किया। स्व० प्रेमचन्द अपने जीवन के लगभग अन्त तक गांधीवादी रहे और अपने साहित्य में इस आशा को स्थान देते रहे कि हृदय-परिवर्तन से समाज सुधर जायगा। यह आशा का अंकुर पहले 'प्रेमाश्रम' में लगा था, किन्तु 'गो-दान' में नष्ट हो चुका है। 'क़फ़न' आदि कहानी भी हमें एक दूसरे ही दृष्टिकोण का आभास देती हैं। 'समर-यात्रा' का संदेश यह महारथी हमें निरन्तर अपना शंख फूँक सुनाता रहा। आपकी रचना को हम किसानों का अमर गीत कह सकते हैं।

राष्ट्रीय जाग्रति के साथ अनेक गायक भी पैदा हुए, इनमें सबसे अधिक प्रभावशाली 'नवीन' हैं। आप कहते हैं :

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ—जिससे उथल-पुथल मच जाये।
एक हिलोर इधर से आये—एक हिलोर उधर से आये।
प्राणों के लाले पड़ जायें त्राहि-त्राहि रव नभ में छाये।
नाश और सत्यानाशों का धुआँधार जग में छा जाये।

बरसे आग, जलद जल जायें, भस्मसात् भूधर हो जायें।
पाप-पुण्य, सदसद्भावों की, धूल उड़ उठे दायें-बायें।
नभ का वक्षस्थल फट जाये, तारे टूक-टूक हो जायें।
कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाये ॥

आपने 'गान्धी गुरुदेव', 'मानव', 'पराजय-गान' आदि अनेक शक्तिपूर्ण कविताएँ लिखी हैं। हमें हर्ष है कि अब वर्षों बाद 'कुंकुम' नाम के संग्रह में आपकी कविता सर्वसाधारण को प्राप्य हो गई है। गान्धीजी को आपने 'ओ क्षुरस्य-धारा-पथ-गामी !' कहकर सम्बोधित किया है। 'पराजय-गान' पहले सत्याग्रह-आन्दोलन की पराजय के बाद लिखा गया था :

'आज खड्ग की धार कुण्ठिता, है ख़ाली तूणीर हुआ !
विजय-पताका झुकी हुई है, लक्ष्य-भ्रष्ट यह तीर हुआ—'

'मानव' लम्बी कविता है। इसमें आपने मनुष्य के विकास की रेखाएँ खींची हैं, आदिम युग से आज तक।

'नवीन' की श्रेणी में और भी अनेक समकालीन कवि आते हैं, 'एक भारतीय आत्मा', 'त्रिशूल-सनेही', श्री रामनरेश त्रिपाठी, सुश्री सुभद्राकुमारी चौहान। इन सभी के काव्य में भारत की राष्ट्रीय भावनाओं का उत्तेजित स्वर है।

गान्धी-युग में देश अपनी पराधीनता और शृङ्खलाओं की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। वह दुःसह भार न सहन कर सकने के कारण इस युग के तरुण कवियों ने कल्पना के जग में भागकर शरण ली। सर्वथा अन्तर्मुखी होकर कवियों की प्रेरणा सोने-चाँदी के ताने-बानों से शब्द-जाल बुनने लगी।

'प्रसाद' अतीत के सपने देखने लगे। किन्तु भागकर भी ये कवि जीवन से विलग न हो पाये और एक मधुर पीड़ा-भार से उनका काव्य आक्रान्त हो उठा :

'मृग मरीचिका के चिर पथ पर,
सुख आता प्यासों के पग धर,
रुद्ध हृदय के पट लेता कर—'

फिर भी कभी-कभी छायावादी कवियों की रचना में देश का क्रन्दन प्रतिध्वनित हुआ है। पन्त का 'परिवर्तन' इसका उदाहरण है। इतिहास के स्वर्ण-पट को निरन्तर देखते हुए पन्त कहते हैं :

'कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?'

अतीत से वर्तमान की तुलना करके इस भीषण 'परिवर्तन' पर कवि का विकल हृदय हाहाकार कर उठा है :

'अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही ताण्डव-नर्त्तन विश्व का करुण-विवर्त्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन, निखिल उत्थान, पतन !'

'युगान्त' की अन्तिम कविता 'बापू के प्रति' पन्त की प्रतिभा के एक युग का अन्त होने की सूचना थी। यद्यपि मनन और चिन्तन अब भी पन्त के प्रधान काव्य-गुण हैं, वह अब आँख खोल समाज-व्यवधान को देखते हैं और कल्पना के गुम्बज से बाहर निकल आते हैं। 'बापू...' से 'युग-वाणी' एक सहज और स्वाभाविक पग है। श्री नरेन्द्र ने 'युग-वाणी' के पन्त को 'वर्गहीन बुद्धिवादी' कहा है। इन कविताओं में भावना और

कल्पना की मात्रा बहुत कम है। बहुत हद तक यह कविताएँ प्रयोगात्मक हैं। जो भैरववाणी पन्त खोज रहे हैं, वह अभी उन्हें मिली नहीं। अतीत से मुड़कर वह वर्तमान और भविष्य की ओर अवश्य उन्मुख हुए हैं। यह दृष्टिकोण में परिवर्तन हमारे लिए बहुत आशाजनक है, क्योंकि छायावादी पन्त अपना ऐतिहासिक पार्ट सम्पूर्ण कर चुके हैं।

छायावादी कवियों ने हिन्दी काव्य के टेकनीक में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन किया और कविता को नया जीवन प्रदान किया। इस कार्य में 'निराला' सब से आगे थे। आपने नये स्वरों और ताल में कविता का संगीत रचा। साथ ही आप देश के जीवन से विरक्त न थे :

'जागो फिर एक बार !
उगे अरुणाचल में रवि,
आई भारती रति कवि कण्ठ में,
पल-पल में परिवर्तित होते रहे प्रकृति-पट,
गया दिन, आई रात,
मुँदी रात, खुला दिन,
ऐसे ही संसार के
बीते दिन पक्ष-मास,
वर्ष कितने ही हज़ार।
जागो फिर एक बार !'

विचित्र स्वर-लहरी में सजा आप 'भारत की विधवा' के प्रति अपने विचार प्रगट करते हैं :

'वह इष्ट-देव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की ही विधवा है।'

इन बन्धन-मुक्त छन्दों में आपने बन्दी समाज को स्वतन्त्रता और एक नये युग का सन्देश सुनाया है :

'ताल-ताल से रे सदियों के जकड़े हृदय-कपाट,
खोल दे कर-कर कठिन प्रहार—'

हिन्दी के आधुनिक प्रगतिशील कवियों में 'दिनकर' का स्थान बहुत ऊँचा है। यौवन के स्वप्न और कल्पना-राज्य आपने देश के ऊपर न्यौछावर कर दिये हैं। आपकी कविता कहती है :

'आज न उड़ के नील-कुंज में स्वप्न खोजने जाऊँगी
आज चमेली में न चन्द्र-किरणों से चित्र बनाऊँगी—'

आप कल्पना के व्योम में उड़ने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु :

'रह-रह पंखहीन खग-सा मैं गिर पड़ता भू की हलचल में;
झटिका एक बहा ले जाती स्वप्न-राज्य आँसू के जल में।'

अब 'चाँदी का शख' उठाकर आप उसमें 'भैरव-हुङ्कार' फूँक रहे हैं और इस युग को जय का सन्देश सुनाते हैं :

'जागरूक की जय निश्चित है, हार चुके सोनेवाले !'

× × ×

मंज़िल दूर नहीं अपनी दुख का बोझा ढोनेवाले !

'नई दिल्ली', 'विपथगा', 'हिमालय', 'भविष्य की आहट' आदि अनेक अमर गीतों की आपने रचना की है। क्रान्ति के अनेक शक्तिशाली चित्र आपने खींचे हैं :

'अँगड़ाई में भूचाल, साँस में लंका के उनचास पवन ।'

× × ×

'मेरे मस्तक के छत्र मुकुट वसु-काल-सर्पिणी के शत फन
मझ चिर कुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रुधिर-चन्दन
आँजा करती हूँ चिता-धूम का दृग में अन्ध-तिमिर-अंजन
संहार-लपट का चीर पहन नाचा करती मैं छूम—छनन—'

× × ×

'पायल की पहली झमक, सृष्टि में कोलाहल छा जाता है
पड़ते जिस ओर चरण मेरे, भूगोल उधर दब जाता है ।'

'दिनकर' के काव्य का सबसे उपयुक्त विवेचन उन्हीं के शब्दों में हो सकता है :

'समय ढूह की ओर सिसकते मेरे गीत विकल धाये,
आज खोजते उन्हें बुलाते वर्तमान के पल आये ।'

'वर्तमान के पल' आज हिन्दी के सभी कवियों को बुला रहे हैं। 'बच्चन' और महादेवी वर्मा तो काव्य की परम्परागत धाराओं से सन्तुष्ट हैं, किन्तु अन्य सभी प्रमुख कवि प्रगति का मार्ग खोज रहे हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा की 'भैंसागाड़ी' इसी प्रवृत्ति

का इशारा है। नरेन्द्र ने 'प्रभात-फेरी' से 'ज्येष्ठ के मध्याह्न' तक इस पथ को अपनाया है। 'प्रवासी के गीत' हमारी निराशा के गहरेपन का कुछ आभास देते हैं। जिस छायावाद से पन्त और 'निराला' ने हिन्दी के नवीन युग का श्रीगणेश किया था, वह अब अस्तप्राय है। हिन्दी के तरुण कवि 'अंचल' और राजेश्वरप्रसाद गुरु की नई कविताएँ भी इस विचार की पुष्टि करती हैं।

इस परिवर्तन का बहुत कुछ श्रेय प्रगतिशील-लेखक-संघ को है। सन् १९३५ में नवम्बर के कोहरे-भरे दिनों में कुछ भारतीय विद्यार्थियों के एक छोटे-से दल ने नैनकिंग रेस्टोरॉ में भारतीय प्रगतिशील-लेखक-संघ की स्थापना की। इनमें डा० मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर आदि प्रमुख थे। पहली भारतीय कॉन्फ्रेंस लखनऊ में एप्रिल १९३६ में हुई। इसके सभापति स्वर्गीय प्रेमचन्द थे। दूसरी कॉन्फ्रेंस कलकत्ता में दिसम्बर १९३८ में रवि बाबू की अध्यक्षता में हुई। इन कुछ ही वर्षों में हमारे साहित्य और कला-सम्बन्धी विचारों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुका है।

लड़ाई और तानाशाही संस्कृति के सबसे बड़े शत्रु हैं। आत्म-रक्षा के लिए फ्रांस आदि देशों में लेखकों ने एक लोहे की दीवार-सी बना ली है। भारत में विदेशी शासन, सामन्तशाही आदि शत्रु हमारी संस्कृति को नहीं पनपने देते। ऐसी अवस्था में लेखकों का यह कर्तव्य हो जाता है कि संस्कृति-विकास के अनुरूप वातावरण की वह सृष्टि करें।

इस उद्देश्य से भारतीय लेखकों का एक छोटा-सा दल आगे बढ़ा। स्वर्गीय प्रेमचन्द, कवि श्रीपन्त, नरेन्द्र, बेनीपुरी आदि इस आन्दोलन से प्रभावित हुए। इनकी रचना में समाज और

संस्कृति के प्रति एक नये दृष्टिकोण का आभास मिलता है। इस आन्दोलन से हमारे साहित्य में नया जीवन और बल आ गया है।

प्रगतिशील दल के मुख्य लेखक मुल्कराज आनन्द हैं। आपने अँग्रेज़ी में अनेक प्रभावशाली उपन्यास लिखे हैं। कुछ आपकी कहानियाँ हिन्दी में भी निकल चुकी हैं। आप निर्मम यथार्थवादी हैं। इसी श्रेणी में सज्जाद ज़हीर, अहमद अली आदि आते हैं। ज़हीर का एकांकी 'बीमार' और अहमद अली की कहानी 'हमारी गली' ख्याति पा चुके हैं। वास्तव में यह दोनो उर्दू के लेखक हैं। बेनीपुरी में हम इस आन्दोलन का प्रभाव अच्छी तरह तौल सकते हैं। बेनीपुरी हिन्दी के पुराने लेखक हैं, किन्तु अब आपकी रचना में नया उत्साह और बल है। 'देहाती दुनिया' का 'लाल तारा' से कुछ मुक़ाबिला नहीं। 'लाल तारा' हाल में निकलनेवाली पुस्तकों में अपना अलग स्थान रखती है। एक नये युग का सन्देश लेकर यह 'लाल तारा' हमारे आकाश में उदय हुआ है।

हमें आशा है कि नवयुग के लेखक संस्कृति की रक्षा में हमारी सेना की दूसरी दीवार बनेंगे और हमारे व्यूह को अभेद्य बना देंगे।

●